सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन, धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दया नामकी दया वंश-ब्यालीसकी दया

अथ श्रीबोधसागरे

सप्तविंशतिस्तरंगः

आत्मबोध प्रारम्भः

रेखता

भक्ति भगवानकी बहुत बारीक है, शीस सौंपे बिना भक्ति नाहीं।
होय अवधूत सब आश तनकी तजै, जीवता मरै सो भक्ति पाहीं॥
नाचना कूदना तालको पीटना, राँड़िया खेलकी भक्ति नाहीं।
रैनदिन तार निर्धार सो लागिरहै, कहैं कबीर तब भक्ति पाहीं॥

भजनके वासते सन्तजन कहत है, राम रमतीति एक नामतेरा ।
नामएकठामकुलगाम नहिंदेखिये,अगमऔनिगमदोउथकतचेरा॥
इन्द्रियादि मन वाक्य पहुँचे नहीं, सकल प्रकाशकरि रहै न्यारा।
रूपअरु रेख वपुभेष नहिं पाइये, कहैं कबीर सो पीव प्यारा ॥
आप दरिआवहै त्रंगपुनी आवही, आपही बुदबुदा फेन होई ।
आपही घट है मठ पुनि आपही,आपही अम्बर अकाश सोई॥
आप प्रकट है आप माही रमे, आपही करत किलोल भाई ।
कहैं कबीर आपही रमिरहा, आप बिनु दूसरा कहाँ समाई ॥
आपही मृत्तिका आपही कुलाल है,आप ही फेरता चक्र काला ।
आपही सूत है आप मणिया बना,आपही फेरता चक्र माला ॥
आपही सतगुरु शिष्य पुनि आपही,आपही करत उपदेश भाई।
कहैं कबीर तहाँ आपही बनि रहा, आपही आपको दे लखाई ॥
ऊँच अरु नीच कछु भेद आनै नहीं, राव अरु रंक सब एक देखै।
एकही तत अरु एकही ठाठ है, एक बिन दूसरा नाहिं पेखै ॥
काममें क्रोध अरु रागमें द्वेष है, राम भजि राम भजि दूर घेरै।
कहैं कबीर मन पवनको फेरिके,पिसन पांच प्रबलको पडि जेरै ॥
एकबिन दूसरा दृष्टि आवै नहीं, एकबिन कहो तुम कौन दूजा ।
एकबिन दूसरी सेव कहो कौनकी, एक बिन दूसरी कौन पूजा ॥
पांच पचीसका एक मंडान है, एक प्रकाश ब्रह्मांड कीया ।
कहैं कबीर अब द्वैत दीखे नहीं, एक अद्वैत गुरुदेव दीया ॥
अडिग्ग अडोल अबोलसमरथ धनी,नाम निर्वाण तिस थाह नाहीं।
शेषशिव विरंचि तिस थाहपावैंनहीं,उदय अरुअस्त नहीं धूपछांहीं॥
रूप अरु रेप नहीं वर्ण आश्रम कहूँ, आप अलेख सब ठौर पूरा ।
कहैं कबीर कहूँ लिप्त होवै नहीं, सैन लखै कोई सन्त सूरा ॥
जलजहां थल करै थलतहाँ वहन करै,वहन करि फिरि थलकरत साई।

राव सो रंक करि रंक राजा करै, अविगतिकी गति कहो कौनपाई॥
पलएकमें भाजिकरि फिर रचनकरे, समरत्थकीबाजिया कौनजाने।
कहैं कबीर यह खेल समरत्थका, होय साक्षी तिहिको सुख माने॥
रजाय तुम्हारी साइंयां करोसो होगया, आपकीरजाकहो कौनमेटै।
पल एकके बीचमें दरिआवदहपेलता, फिरि पलएकमहँलेस मेटै॥
उलटका पुलट अरु पुलटका उलट है, आपका खेल कहो कौनपावै।
पल एकमें भाजि करि फिरि रचनाकरै, कहैं कबीर नहीं हारिआवै॥
दृष्टि औ मुष्टि नहिं ज्ञान गुष्टि तहाँ, सकल प्रकाश करि रहै न्यारा।
सकलके मांहि अरु सकलकी जान है, आदि अरु अन्त नहिं मध्यपारा॥
परम प्रकाश आकाशवत जानिये, बाहिरा भीतरा एक साईं।
कहैं कबीर यह खेल भरपूर है, आवना जावना फेरि नाईं॥
खेल अवधूतका महा अद्वैत है, द्वैत प्रपंचका लेश नाहीं।
गुणमयीकृत सब कालकी डाटमें, शेषशिवविरंचि अरु विष्णु ताहीं॥
रहै निर्धार आकार थिर ना रहै, विश्व संसार सब अधर माहीं।
कहैं कबीर यह खेल निश्चे किया, जन्म अरु मरण तिस भर्म नाहीं॥
देख अवधूतके ज्ञानका घेसला, कालके जालको दूरि तोडै।
गुणमई कृतको काटि पयमाल करि, पांच पचीसको पलटि मोडै॥
राग अरु द्वेषकी भीतिको ढाय करि, भर्मके कोटको फोर फोडै।
कहैं कबीर यों प्रेम प्रकाश करि, सुरति अरु निरतिका तार जोडै॥
सैलियां बाकियां देख अवधूतकी, जीवता मरै सो भक्ति पाहीं।
तीर खुरसानका बहत तीखा बहै, लगै उर मांहि गद टिकै नाहीं॥
राजसा माहिं गद बहु ऊपजे, तामसा मांहि अहंकार भाई।
कहैं कबीर तहां शांति कहँ पाइये, जीवकी वृत्तिको ठीक ठाई॥
दृष्टि अवधूतका दुष्ट नहिं सहि सके, दुष्टको द्वैतकी दृष्टि भासै।
परम प्रकाशका भेद पावै नहीं, इन्द्रियां द्वारके रहे आसै॥

कहै सब साधु अगाध मैं क्या कहूँ, बिना निर्वेद नहिं दृष्टि आवे।
कहैं कबीर यह खेल बारीक है, बिना गुरु देव कहो कौन पावे ॥
देव निर्वाण तहाँ बाण लागे नहीं, सकल कला सिरे काल देवा ।
शेष शिव बिरंचि तिस पार पावे नहीं, चन्द अरु सूर फिर करैं सेवा॥
तेज क्षिति पवनजल रहत आज्ञासही, निगमहू कहत नहि पार आवै।
कहत अगाध २ सब संत जन, दास कबीर तहँ शीस नावै ॥
सांचा साइयां एकतू और दूजा नहीं, दृष्टि दीखे तेती सकलमाया।
गुणमयी कृत प्रपंच सब बिनसिहैं, थिर नहीं दीखता रहन पाया॥
घट अरु मठ महदादि थिर ना रहै, रहैगा आदि सोइ अंतनाई ।
कहैं कबीर मैं तासुकी बन्दगी, एक भरपूर सर्वज्ञ साई ॥
देवरे देवरे देव निर्वाण है, कालका बाण तहाँ नाहिं लागै ।
चन्द औ सूर प्रकाश करि सकै, करत परपंच कै रहै आगै ॥
विश्व आधार अरु आप निर्धार है, लहै कोइ संत गुरु ज्ञान जागै।
कहैं कबीर विष धार सो ना बहै, जन्म अरु मरणका भर्म भागै॥
खिरै सो थिर नहीं थिर नहीं खिरत है, आनंद अमरानंद अलख योगी।
सकलकेमाहिंअरु रहतअतीतहोय, तीनगुन पांचरस सकलभोगी ॥
खेल अगाधकछु कहत आवे नहीं, खेलको देखि करि मगन हुआ।
कहैं कबीर यह सैन गुंगातणी, जानिहै संत सो नाहिं जूआ ॥
जागता २ जागकर देखिया सोवता सोवता सुख सोया ।
खोवता खोवता खोय सारा दिया, रहासो कहनमें नाहिं आया॥
अर्थ अगाध कोई साध भल पाइहै, जासुके खेल प्रकट होई ।
कहैं कबीर यह खेल प्रतीतका, बिना प्रतीत क्या कहै कोई ॥
रैन दिन संत यूं सोवता देखिये, संसारकी तरफसूं पीठ दीया।
मन अरु पवन फिर फूट चालै नहीं, चन्द अरु सूरकूं समकीया॥
टकटकी चन्द चकोरकी रहत है, सुरतिअरुनिरतिका तारबाजे ।

कहै सब साधु अगाध मैं क्या कहूँ,बिना निर्वेद नहिं दृष्टि आवे।
कहैं कबीर यह खेल बारीक है,बिना गुरु देव कहो कौन पावे॥
देव निर्वाण तहाँ बाण लागे नहीं, सकल कला सिरे काल देवा।
शेष शिव बिरंचि तिस पार पावे नहीं,चन्द अरु सूर फिर करैंसेवा॥
तेज क्षिति पवनजल रहत आज्ञासही,निगमहू कहत नहिं पार आवै।
कहत अगाध २ सब संत जन, दास कबीर तहँ शीस नावे॥
सांचा साइयां एकतू और दूजा नहीं,दृष्टि दीखे तेती सकलमाया।
गुणमयी कृत प्रपंच सब बिनसिहैं,थिर नहीं दीखता रहन पाया॥
घट अरु मठ महदादि थिर ना रहै,रहैगा आदि सोइ अंतनाई।
कहैं कबीर मैं तासुकी बन्दगी, एक भरपूर सर्वज्ञ साई॥
देवरे देवरे देव निर्वाण है, कालका बाण तहाँ नाहिं लागे।
चन्द औ सूर प्रकाश करि सकै, करत परपंच कै रहै आगै॥
विश्व आधार अरु आप निर्धार है,लहै कोइ संत गुरु ज्ञान जागे।
कहैं कबीर विष धार सो ना बहै,जन्म अरु मरणका भर्म भागै॥
खिरै सो थिर नहीं थिर नहीं खिरत है,आनंद अमरानंद अलख योगी।
सकलकेमाहिंअरु रहतअतीतहोय,तीनगुन पांचरस सकलभोगी॥
खेल अगाधकछु कहत आवे नहीं,खेलको देखि करि मगन हुआ।
कहैं कबीर यह सैन गुंगातणी, जानिहै संत सो नाहिं जूआ॥
जागता २ जागकर देखिया सोवता सोवता सुख सोया।
खोवता खोवता खोय सारा दिया,रहासो कहनमें नाहिं आया॥
अर्थ अगाध कोई साध भल पाइहै, जासुके खेल प्रकट होई।
कहैं कबीर यह खेल प्रतीतका, बिना प्रतीत क्या कहै कोई॥
रैन दिन संत यूं सोवता देखिये, संसारकी तरफसूं पीठ दीया।
मन अरु पवन फिर फूट चालै नहीं,चन्दअरुसूरकूं समकीया॥
टकटकी चन्द चकोरकी रहत है, सुरतिअरुनिरतिका तारबाजे।

नौबत तहाँ रैन दिन शून्यमें धुरत है, कहैं कबीर यों गगन गाजे॥
पाव अरु पलकी आरती कौनसी, रैन दिन आरती संग गावें।
धुरत निशान तहाँ गैबकी झालरा, गैबके घंटका नाद आवे॥
जहाँ नेव बिन देहरा देव निर्बाण है, गगनके तख्तपर युक्ति सारी।
कहैं कबीर तहाँ रैन दिन आरती, बातियां पांच पूजा उतारी॥
साइ आपकी सेवतो आपही जानिहो, आपका भेद कहु कौन पावे।
आपनी आपनी बुद्धिउनमानसो, वचनविलास करि लहरिलावे॥
तू कहै तैसा नहीं है सो नहीं देखिये, निगम हू कहत नहीं पार आवे।
कहैं कबीर या सैन गुंग तणी, गुंग होय सो सैन पावे॥
कथत है ज्ञान अरु ध्यान पुनि धरत है, चलत विचारके पंथमांही।
श्वास उश्वास फिरि गूदडी सीवता, सुरतिकी सूइनहिं अंतजाही॥
रहै निर्द्वन्द कोइ द्वन्दमें ना पडै, मन अरु पवनका करै खेला।
कहैं कबीर फिर फूट चाले नहीं, सहज दरिआवमें रमे मेला॥
पुरुषकी सेवते पुरुषही होत है, नारिके सेवते नारि होई।
पुरुषकी सेवते परम पद पाइये, नारिके सेव नहिं मुक्ति कोई॥
पुरुष प्रमात्मा देव निर्वाण है, नारिये करत प्रपंच सारा।
गुण मई कृतको त्यागरे बावरे, कहैं कबीर ज्यों होय पारा॥
दरोगे बापडे दाम लेखे किया, छतरिया माहि तबकरी वोरी।
बोवरी माहि तहां बैसि करि बावरे, ज्ञान कपट सूँ जडी मोरी॥
रामही राम तहां सदा विश्राम है, रैन दिन जाम जहाँ बजे बाजा।
कहैं कबीर तहाँ पीव संग खेलना, सकल देवा सिरे देवराजा॥
पाँच अरु तीनकी छत्रड़ी साज करि, दरोगे ऊपरै प्राण हूआ।
गगनकी गुफाको पवनसूँ, साफ करि, दमहिदम तहां लिया अजूवा॥
शाह सुलतान सुब्हान सूँ सुर्खरू, दरोगे जाय करि ज्वाब दीया।
कहैं कबीर दीवान तब मिहर करि, आपने कदम मों राखि लीया॥

कर्म अरु भर्म सब संसार करत है,पीवकी परख कोइ संत जाने।
सुरति अरुनिरतिमनपवनकूँपलटिकरि,गंगअरुयमुनके घाटआने॥
पाँचको नाथकरि साथसोहं लिया,अधर दरिआवका सुख माने।
कहैं कबीर सोइ संत निर्भय रहै, जन्म अरु मरणका भर्ममाने ॥
नाभि कस्तूरिका मृग बाँगे फिरै,उलटि करि आपमें नाहिं जोवै।
भर्मता भर्मता योनि पूरी करै, अंधयो आपुनी बस्तु खोवै ॥
नाभि निज नामसो ठाम पावै नहीं,जगत सब तीर्थ गभ भूला ।
कहैं कबीर हरिपंथको नाल है, अंध भवसिन्धुमें फिरत झूला॥
उलटि बजूदमें भर्मना दूरि करि,बाछिकै भटकने सिद्धि नाहीं ।
फिरत बाहरे तहाँ वस्तुको नास है, वस्तु विचारि तू देखमाहीं॥
आपमें आपहै आप अजपा जपो, जाप जपेते आप पावै ।
कहैं कबीर ये सत्यकी सैन है, सत्तका शब्द सब संत गावै ॥
गंगा उलटि धरो यमुन बासा करो,पलटि पञ्चतीर्थी पाप जावे।
फूरि वर्षा तहां रैन दिन झरत है,न्हायसो फिरि भौ नाहिं आवे॥
फिरत वारे तहां बुद्धिको नाश है, बाँझके भटकने सिद्धि नाहीं।
कहैं कबीर इस युक्तिको गहेगा,जनम अरु मरण तव अंत पाहीं ॥
बपु बालोतरा माहि वावो रहै, ज्ञान प्रकाश बिन रहै नाहीं ।
बोलता चालता खावता पीवता, करै उपदेश अरु रहै माहीं ॥
दृष्टि दीसै तिनको रहन पावे नहीं, बपु बालोतरो विनसि जावै।
कहैं कबीर एक बोलता सही करै,सो जन्मअरु मरणमें नहिं आवै॥
देख बजूदमें अजब विश्राम है, होय मौजूद तो सही पावै ।
फेरिमन पवनको घेरि उलटा चले,पाँच पचीसको पलटि लावै॥
शब्दकी डोरि सुख सिन्धुका झूलना,घोरकी शोर तहँ नाद गावे।
नीर बिनुकमलतहँ देखअति फूलिया,कहै कबीर मन भँवरछावे॥
रामकी दयाते खेल प्रकट हुआ,तासुका खेल कहो कौन जानै ।

होय अंलीक सो खेल पावैसही, मगन होय आपमें मौज मानै॥
सदा निर्द्वन्द कोइ द्वन्दब्यापे नहीं, गुरुदेवकी मेहर ते मौज पाई।
कहैं कबीर योंखेल सुख सिन्धुमें, भूलि भर्ममें नहिं अंत जाई॥
चक्रके बीचमें कमल अति फूलिया, तासुका सुख कोई सन्त जानै।
कुफल नौद्वार अरु पवनको रोकना, भृकुटिमध्य मन भवर ठानै॥
शब्दकी घोर चहुं ओर तहाँ होत है, अधर दरि आवका सुखमानै।
कहैं कबीर यो खेलि सुख सिन्धुमें, जन्म अरुमरनका भर्म मानै॥
गंग अरु यमनके घाट को खोजिले, भंवर गुँजार तहाँ होय भाई।
सरस्वती नीर तहाँ देख निर्मल वहै, तासु के जल पिये प्यास जाई॥
पाँचकी प्यास तहँ देखि पूरी भई, तिनकी ताप तो लगै नाहीं।
कहैं कबीर यह अगमका खेल है, गैबका चाँदना देखि माही॥
बोलरे बोल अब चुप क्यों होइ रहा, बोल मन सुवटा ब्रह्म बानी।
पाँचको पलटिकरि तीनिको जीतिले, महलचौथातनी खबर जानी॥
गगन गर्जै तहां नीर निर्झर झरै, परखि पावै कोइ संत सूरा।
कहैं कबीर मस्तान माता रहै, बिना मृदंग बजै तूरा॥
माँडि मंथान मन रईको फेरना, होय घमसान तहां गगन गाजै।
उठै झँकार तहाँ नाद अनहद घुरै, तृकुटी महलके बैठ छाजै॥
नामकी नेति करि चित्तको फेरना, ततको ताथ करि घृत लिय।
कहैंकबीर योंसंत निर्भय हुआ, परम सुखधाम तहाँ लागि जीया॥
गड़ा निशान तहाँ शून्यके बीचमें, उलटि करिसुरतिफिरिनाहिं आवै।
दूधकोमथिकरि घृत न्यारा किया, बहुरि फिरितकरमें नाहिं समावै॥
माँडि मंथानतहाँपांच उलटा किया, नामकीनेति सोसुरतिफेरी।
कहैं कबीर यों संत निर्भय हुआ, जनम औ मरणकी मिटी फेरी॥
श्रवण अरु नयनसुखनासिका रटत है, रोमही रोमधुनि एक होई।
बाहिरा भीतरा एकही तान है, एक बिन दूसरी नाहिं कोई॥

अधर दरिआव धसेको मीलिया, बाहिरा भीतरा एक पानी।
कहैं कबीर यह खेलदरिआवका, योग अवधूतकी यहै बाणी ॥
शशि प्रकाशते सूर उगासही, तूर बाजे तहाँ संत झूले।
तत झनकार तहाँ नूर वर्षंत रहै, सरस पीवै तहाँ पांच भूले ॥
दरिआव और बुन्दज्योंदेखअन्त नहीं,जीव अरुशीवयों एकआही।
कहैं कबीर यह सैन गुंगा तणी, वेद कितेबकी गम नाहीं ॥
अगम स्थान गुरुज्ञान बिन नाल है,लहै गुरुज्ञान कोइ संत पूरा।
द्वादशां पलटि करि षोडशां प्रकटै, गगन गजै तहाँ बजै तूरा॥
ईड़ा पिंगला सुषुमना समकरै, अर्ध अरु उर्ध विचध्यानलावे।
कहैं कबीर सोइ संत निर्भय रहै,कालकी चोट फिर नाहिं खावै॥
अधर आसन किया अगमप्याला पिया,योगको मूलगहियुक्तिपाई।
पंथ बिन चलिगये शहर बेगम्य पुरा,दया गुरुदेवकीसमझि आई॥
ध्यान धरि देखियानैन बिनुपेखिया,अगमअगाधसब कहत जाई।
कहैं कबीर कोइ भेद बिरला लहै, सो कहैया भेद भाई ॥
शहर बेगम्य पुरागम्य कोई ना लहै,होय बेगम्य सोई गम्य पावै।
गुननकी गम्य ना अजब बिश्राम है,सैनको लहै सोइ सैनगावै॥
मूक बाणी तिको स्वाद कैसे लहे, स्वाद दावै सोई सुख मानै।
कहैं कबीर या सैन गुंगा तणी, गुंगा होय सो सैन जानै ॥
अधरही ख्याल अरु अधरही कल है,अधरके बीच तहाँ मठकीया।
खेलउलटा चला जाय चौथे मिला,सिन्धुकेमुख फिर शीस दीया।
शब्द घंघोर टंकोर तहाँ अधर है,नूरको परास करि पीव पाया।
कहैं कबीर यह खेल अवधूतका,खेलि अवधूत घर सहज आया॥
छका अवधूत मस्ताना माता फिरै, ज्ञान बैराग्य सों छका पूरा।
श्वास उश्वासका प्रेम प्याला पिया, गगन गजै तहाँ बजै तूरा ॥
पीठ संसार सो राम राता रहै, यतन जरना लिया सदा खेलै।

कहैं कबीर गुरु पीरसूं सुर्खरू, परम सुख धाम तहाँ प्राण मेलै॥
छकासो थका फिर देह धारे नहीं,करम कपाट सब दूर कीया।
जिनश्वासउश्वासकाप्रेमप्यालापिया,नामदरिआवतहांपैसिजीया॥
चढीमतबालियाऔरहुआमनसावता,फटिकज्योंफेरिनहिंफूटजावै।
कहैंकबीरजिनवासनिर्भय किया,बहुरि संसारमें नाहिं आवै॥
तरक संसार सो फरक फुक्र सदा, गरक गुरुज्ञानमें युक्ति योगी।
अरध अरु उरधके बीच आसन किया,बंक प्यालेपीवे रस भोगी॥
आधा दरिआव जहाँजाय डोरि लगी, महल बारीकका भेदपाया।
कहैं कबीर यों संत निर्भय हुआ,परमसुख धाम तहाँ प्राणलाया॥
चमड़ी मतवालि तहाँ ब्रह्म भाठी झरै, पिवै कोइ सूरमां शीसमेलै।
पांचको मेंलि सैतानको पकड़ि करि, प्रेमकाप्यालाअधर झेले॥
पलटिमनपवनकोउलटिसूधाकंवल,अरधअरुउरधबिचध्यानलावै।
कहैं कबीर मस्तानमाता रहै, बिनाकर तातियां नाद गावै॥
आठही पहर मतवाली लागी रहै, आठही पहरकी छाक पीवै।
आठही पहर मस्ता माता रहै, ब्रह्मकी छौलिमें संत जीवै॥
साचहीकहतअरुसांचही रहत है,काचकोत्यागिकरि सांच लागा।
कहैं कबीर यों सन्तनिर्भय हुआ, जन्मअरुमरनका भर्म भागा॥
करत किलोक दरिआवके बीचमें, ब्रह्मकी छौलिमें हंस झूलै।
अरध अरु उरधका एकवारा तहाँ,पलटिमनपवनको कमलफूलै॥
गगन गर्जै तहाँ सदा पावस झरै, होत झड़रैन दिन बजै तूरा।
बेनकितेवको गमनाहीं तहाँ, कहैं कबीर कोई रमै सूरा॥
बजत करताल तहां नीरनिर्झरझरे,होत टकसाल तहाँ,शब्दपूरा।
गैबकी मौन अरु ज्ञानका चांदना, शब्दअनहद तहाँ बजै तूरा॥
होत ततकार तहाँ निरतनिशदिन करै,सुरतिमनपवनकेबैठिछाजै।
कहैं कबीर गुरुपीरकीमिहरिसूँ, बिना बयबादले गगनि गाजै॥

गगनकीगुफातहाँ गैवाकाचांदना, उदयअरुअस्तका नाम नाहीं ।
दिवसअरुरैनतहाँ नेकनहिं पाइये, परमप्रकाशका सन्तमाहीं ॥
सदा आनन्द दुख द्वन्द व्यापे नहीं, पूर्णानन्द भरपूर देखा ।
भ्रम अरु भ्रान्ति तहां नेकनहिं पाइये, कहैं कबीर रस एकपेखा ॥
खेल ब्रह्मांडका पिण्डमें देखिया, जगतकी भरमनादूर भागी ।
बाहिरा भीतराएक आकाशवत, सुषुम्ना डोरी तहाँ उलटिलागी॥
पाँचको पलटिकरि शून्य मोघरकिया, धरामें अधर भरपूरदेखा ।
कहैं कबीर गुरु पीरकी हमरि सूं, त्रिकुटि मध्य दीदार पेखा ॥
देख दीदार मस्तान मन होरहा, सकल भरपूर है नूर तेरा ।
सुभग दरिआवजहाँहंसमोतीचुगे, कालका जालतहाँ नाहिंनेरा ॥
ज्ञानिकीपालिअरुसहजमतवालिहै, अधरआसनकिया अगमडेरा।
कहैं कबीर तहाँ द्वैत भासे नहीं, जन्म अरु मरनका मिटाफेरा ॥
ब्रह्मदरियावतहाँ करतकिलोलमन, सुरतिकीसीपतहाँ शब्दमोती ।
गुरुपीरकीनिहरते भेदयह पाय है, मोतिया माँहितहाँ नाम जोती॥
तिनयापरख कोइ जानिहैं जौहरी, कौडियावणिजनहिंपरखिआवे।
कहैंकबीरकोइ होय मरजीवता, तोखेल दरिआवका हाथ आवै ॥
चितकीरचमककीप्रीतिकरि पथरिया, सुरतिकासोखताखूबलाया।
अग्निको झारि अवधूतप्रचण्ड करि, कर्मसब काठले माहि द्राया॥
हुआ निर्धूमसब सकलसंसार मिटा, खुला कपाट तब घाटपाया।
कहैं कबीरअब द्वैत दीखै नहीं, अखंड करुणा भई रामराया ॥
करियोगयमडाठउगालि करिदेहगुण, चतुर्दशभवनका लोग खाया।
महाप्रलयकियाबीजकोईनारहा, रहाएकनिर्द्वन्दनहिंकालखाया ॥
खेल अगाधकोइ साधुभल पाइ हैं, महाप्रलय जिनकिया सोई ।
कहैं कबीर फिर उपजिविनशै नहीं, अहंममताजिनकुबुधि खोई॥
कालकेजालके भेद नहिं राममें, कालकहौं कौनको खाइ हैं रे ।

वस्तुमें वस्तुअरु तत्त्वमें तत्त्व मिलै, जीवका नामयो जायहैं रे॥
जन्म अरु मरनकी शंक नाहीं कछु, जन्म अरुमरनको पाइहैरे।
कहैं कबीर यों संत निर्भय हुआ, बहुरि संसार नहिं आइहैं रे ॥
धेनु ब्यावैतिको दूध भरवे नहीं, बाँझडी धेनुको दूध होई ।
बाँझडी धेनुको दूध पीवैतिको, होय सुख रूप ना मरे कोई ॥
बाँझडी धेनुको पुत्र पैदा हुआ, मरि मन मृगको माँस खावे ।
कहैं कबीर सो पुत्र हैं पाँगुला, चढ़ै आकाश फिर नाहिं आवे॥
समुन्द्र उलटा तबै सीपमाहीं मिला,हुआ मोती तहां सीपमाहीं ।
जल बिनाहंसतहांसदामोती चुगे, ताहंसको कालकी चोट नाहीं॥
नदी उलटी तबै समुन्द्र माही मिली,प्राण हंसा तहां सदा झूलै ।
कहैं कबीर कोइ भेद बिरला लहै,विना जल केतकी कमल फूलै॥
नहरी काटि करि उलटि पाछे दई,ज्यायुं दरियावका सोतलागि।
सदा सुख सिंधुमें माछलाँ झूलता, जन्मअरुमरनका भर्मभागा॥
रोमही रोम रसनीरको पीवता, नीरकी प्यासमें सदा जीवे ।
कहैं कबीर सुख सिंधु छाडै नहीं, खार दरिआवजलनाहिं पीवे॥
सुख सिंधुकेसीरका स्वाद तबपाइ हैं,चाहका चौतरा उठिजावे ।
बीजके माहि ज्यों वृक्ष विस्तार है,यों चाहके मांहिसबरोगआवे॥
प्रौढ़ वैरागमें होय आरूढ़ मन, चाहके चौतरे आग दीजे ।
कहैं कबीर यों होय निर्वासनी, ततसो रत्त होय काज कीजे ॥
सूर प्रकाश तहां रैन कहाँ पाइये, रैनिप्रकाश नहिं सूर भासै ।
ज्ञान प्रकाश अज्ञान कहँ पाइये, होय अज्ञान तहां ज्ञान नासै ॥
काम बलवान तहांराम कहँ पाइये, रमिरहा राम तहां कामनाहीं।
कहैं कबीर यह तत्त्वविचार है,समझि बिचारि करि देख माहीं॥
कामकी कोथली मूलमें जलि गई, रामकी कोथली रहै प्यारे ।
राम विश्राम तहां काम कहाँ पाइये,कामविश्रामतहांराममन्यारे॥

दिवस अरु रैन फिर एकठां ना रहे, ज्ञान अज्ञान नहिं एक होई ।
कहैं कबीर यह भेद जान्या बिना, जीव विश्राम क्यों लहै कोई॥
घुरत निशान तहां शून्यके बीचमें,रमत चौगान कोइ सन्त सूरा।
झूझ बिन झूझ अरु बूझ बिनु बूझना,पावबिनपंथतहांबजै तूरा॥
नैन बिनु सैन अरु बैनबिनुबोलना, पाप प्रचंड तहां जाय चूरा ।
कहैं कबीर ये विकट सा खेल है,लहै कोइ सन्त गुरु ज्ञान पूरा॥
एक शमसेर एकसार बजती रहे, खेल कोई सूरमा सन्त झेलै ।
कामदलजीतिकरिक्रोधपयमालकरि, परमसुखधामतहांप्राणमेलै॥
शील सनाहकरि ज्ञानको खड्गले, आय चौगानमें खेल खेलै ।
कहैं कबीर सन्त जन सूरमा, शीसको सौंपि करि करम ठेलै ॥
पकड़ि शमशेर संग्राममें पैठिया, देह प्रयंत करि युद्ध भाई ।
काटि शिर बैरिया दाबि जहाँका तहां,आयदरबारमें शीस नाई ॥
करतमतवाली जहाँ सन्तजनसूरमा,घुरतनिशानतहांगगनि घाई ।
कहैं कबीर अब श्यामसो सुर्खरू, मौजदरियावकी भक्ति पाई ॥
तन बन्दूक अरु पवन दारू किया,ज्ञानगोली तहां खूब दाटी ।
सुरतिकी जामगीमूठ चौथेलगी, भर्मकी भीति तहां दूरिफाटी ॥
कहैं कबीर कोइ खेलिहैं सूरमा, कायरा खेल यह हाथ नाहीं ।
आसकी फाँसको काटि निर्भय भया, रामरमिरामरमि गर्क माहीं॥
ज्ञान शमशेरको बाँधि योगी चढ़ै, मारिमन मीररणधीर हूआ ।
खेतकोजीतिकरिपिसनसबपेलिया,मिलाहरिमांहिअबनाहिंजूवा ॥
जगत्में यश अरु दाद दर्गाहमें, खेलयों खेलिहैं सूर कोई ।
कहैं कबीर यह सूरका खेल है, कायरां खेल ये नाहिं होई ॥
सूर संग्रामको देखि भाजे नहीं, देखि भाजैतिको सूर नाहीं ।
काम अरुक्रोधमदलोभसोजूझना, मंडाघमसान तहां खेतमाहीं ॥
शील अरु साँच संतोषसहाई भये,ज्ञान शमशेर तहां खूब बाजे ।

कहैं कबीर कोइ जूझि हैं सूरमा, कायरा भीरु तहां घरडिभाजे ॥
शूर संग्रामको देखि सन्मुख मँडा, शीश दे नाथको साथ हुआ।
कमदकीलो कियो फौजमांही पड़ा, पिसन पाँचुदलजीति जुवा ॥
ज्ञान शमशेर ले भूमि सवसर करी, जाय निर्बानपद किया बासा।
कहैं कबीर रणधीर निर्भय हुआ, शीस जगदीश जगजीति खासा ॥
साधुका खेल तो विकटबैडा मता, सती औ सूरकी चाल आगे।
सुर घमसान है पलकएक दोयका, सती घमसान पलएक लागे॥
साधु घमसान है रैनि दिन जूझना, देह प्रयंत का काम भाई।
कहैं कबीर टुकबाग ढीली करे, तो उलटि मनमगनसो जमी आई ॥
साधु पद कहत तो बात अगाध है, साधु का खेल तो कठिन भाई।
होयमरजीवता गत सब गुण करे, साधु पद भला तो हाथ आई ॥
अवनिके गुण धरे रहत गिरि मेरु ज्यों, किलाको देखि नहिं छोभ पावे।
कहैं कबीर कोइ रेख नहिं ऊपजे, साधु पद भला तो हाथ आवै ॥
नाच आवै तबै काछको काछिये, नाचबिनकाछ किस काम आवै।
पहिरि सन्नाह धरि नाम रणजीतको, बेरघमसानके कूदि जावै ॥
उतरै नूर अरु श्याम नहिं आदरे, दाद दर्गाह में नाहिं पावै।
सिंहकी खाल अरु चाल है भेडकी, कहैं कबीर तब सियालखावै ॥
ब्रह्म चौगान तहाँ ज्ञानकी गेंद है, रमत अवधूत कोई सन्त सूरा।
सुरतिके दंडसोफेरि मन पवनको, शब्द अनहद तहाँ बजे तूरा ॥
सदारसएकतहाँ मूठिनहीं बिभचरे, कालसेतीलडै रैनदिनहोय घमसानमाही।
कहैं कबीर यह विकट बैड़ा मता, कायरा खेल का काम नाहीं ॥
सकल संसारमें एक चीपि फिरि, शील अरु सांच संतोष नाहीं।
जगत अरु भेष सबएक नाके चला, जत अरुसत्त कहाँ ठौर पाहीं॥
दम्भपाषंड संसार सब मिलत है, सांचके शब्दको नाहिं मानै।
कहैं कबीर यह खेल बारीकहैं, साधुके राहको कौन जानै ॥

सकल संसार विषधारमें बहत है, रहत कोइ सन्तजन नामराता ।
झूठ अरुकपटयेदूरिदिलते करे,तबजन्मअरु मरनका मर्म भागा॥
सुखसार हृदयधरे छारसब पर हरै, इन्द्रिया द्वारते फिरै पूठा ।
कहैं कबीर सोइ सन्त निर्भय हुआ, जगतसंसार सो रहै रूठा ॥
राग अरु द्वेषते रहित हैं तेजना, येजना रामके रंग राते ।
महल बारीकमें सदा भीना रहै, प्रेम प्याला पिवे रस माते ॥
ज्ञान गलतान अरु अंग शीतलसब, धरामें अधरमिलिएकहूआ ।
कहैं कबीर महदादि अरु मठज्यों, घटा फूटै जबै माहि जूवा ॥
भेष दरिआवमें हंस भी होत है, भेषदरिआव तहाँ बग होई ।
भेषदरियाव तहाँ रतन भी होत है,भेषदरिआव तहाँ सङ्ख सोई॥
जीवता मुये बिन भेद पावै नहीं, जीवता मरै सो भेद पावै ।
कहैं कबीर गुरुपीर पूरा मिलै, तब कछु नमूना दृष्टि आवै ॥
झूठ अरु सांचका तान कैसे मिलै,रैन अरु दिवसका फरकभारी।
लोनअरु शकरएकहोतहैं, कहाँ खाँडकीजात कहाँ लवनखारी ॥
हंस अरु बगदोउ एकसे देखिये, चालके माहिती फरक भारी ।
कहैं कबीर वह हंस मोती चुगे, वगतो माछली ढूंढिमारी ॥
साधुके संगते साधुही होत है, जगतके संगते जगत होवे ।
साधुके संगते परम सुख ऊपजे, जगतके संगते जन्म खोवे ॥
साधुके संगते परमपद पाइये, जगतके संग दुख होय भारी ।
कहैं कबीर यह संतका शब्द है, सुनोरे जीव सब पुर्ष नारी ॥
दरिद्री देख अवधूत है भरथरी, दूसरा दरिद्री नाहिं कोई ।
पांच अरु पचीसकूंपलटि नाकैकिया, मनअरुपवनयेजातिदोई ॥
सदानिर्द्वन्दकोइद्वन्द्व व्यापेनहीं, अजरअमरानन्द अगम राता ।
कहैं कबीर यह दरिद्री देखिये, दूसरा दरिद्री नरक जाता ॥
सुखी अवधूत दुखी सब जगत है, रैनदिनपचतनहिं भूख भागै ।

ये सदानिर्द्वन्द कोइ द्वन्दव्यापेनहीं,गुरुदेवकेशब्दतेसूरति लागी॥
तत्त्वसूरति अरुगत सबगुण किया,प्रकटी अग्नि सब भर्म भागा।
कहैंकबीरसंसार सब गलत है, नहिं ज्ञानका ओढनासदा नागा॥
नरकका जीवसबनरकमें मिलरहा, नरकबिनऔरनहिंबातआवे।
नरकमें उपज्या नरकमें खपेगा, रैनदिन नर्कके माहिं ध्यावे॥
शील अरु सांच संतोष सूझै नहीं, इन्द्रिया द्वार रस जहरपीवे।
कहैं कबीर नर सहीसो मरेगा, बिना हरि आसरे कहाँ जीवे॥
नाम गुरुदेव अरु शिष्यहै नारिका, कपिज्योंनाचताफिरत भाई।
देतहै ठान तब करत उनमाद नर, बन्दगी करतहै चित्त लाई॥
करत सँघार अरु खानको देत है, गुडअरु सूंठ बूरा बिसाई।
कहैंकबीर यह अकिल अज्ञानकी, कहत गुरुदेव नहीं लाजआई॥
बारहिबार मन पवनको सोधि नर, पांच प्रमोधि करिनामलीजे।
भांग अरु तमाकू खाय अफीमको, कालके जालमें न्यायछीजे॥
भांगकी तोरमें रैनि दिन फूलिया, भजन प्रतापका सुख नाहीं।
कहैं कबीर सुनु शब्द सांचा कहूं, समझविचार करिदेख माहीं॥
कहनको साध अरु व्याध छूटैनहीं,कोटिमें पाव या देख भाई।
खेत अरुकुवा फिरव्याज बाढो करै, बलधियाहांककरि देतखाई॥
नामको फेरि करिजगत धूतासबै, नागिनी नारि घर बार पूरा।
कहैं कबीर मनमाहि फूला फिरै, काल शिर बाजिहै देख तूरा॥
प्रतिग्रह झेलता डरता नाहिं है, कौन गति होइ है जीव थारी।
होयगा ऊंट अरु बाडिको चरैगा, सो डरता फिरैगा बनसारी॥
पायकी पोटको डारिरे पापिया, पछै भी भार तलवहै भारी।
कहैं कबीर नर अंध चेतै नहीं, बात सांची कहूं लगै खारी॥
साधु जो होय तो व्याधको नाशकर, व्याधके नाशते साधु होवे।
वासनाव्याधि सब जीवको दहत है,बिना गुरुदेवकह कौनखोवै॥

कतरनी कपटदिलबीचते दूरिकरि, सांचकी नापनी हाथ लीजै ।
कहैं कबीर यों होय निर्बासना, निर्मला तत रस नाम लीजै ॥
मगनहोयबिश्वासधरिध्यानअलेखको, लिखाहैलेखसोमिटैनाहीं ।
किया है कृत कछु मेटिको करिसकै, दुखअरुसुख या देहमांही ॥
टहलुवा संग दोय टहल करबो करै,आपनी आपनी बेरि आवै ।
कहैं कबीर यों जानि निर्भय रहो, किया है कृत सो कहा जावै ॥
कियासो हुआ अरु करै सो होयगा,जीव क्यों कल्पताफिरैभाई।
लिखाहै अंकसो मेटिको करिसके, बिनाहै रिज्क सो दियाजाई॥
गहो विश्वास एक समरत्थ धनीका,आनको छाडि अलेखधावो।
कहै कबीर सब कल्पना दूरिकरि, पैसिदिलमाहि दिलदारपावो ॥
जीवको जक नहीं रैनदिन पचतहै, करमकी रेख सोई पाइहै रे ।
तनकी भूख सहल है बावरे, मनकी मेर नहीं धायहै रे ॥
आपना कृत तो दृष्टि नहिं देखता, पारके भागको रोयहै रे ।
कहैं कबीर यों रतनको खोय करि, जीव अज्ञानमें सोयहै रे ॥
आपनी अग्निमें आपही जलतहै, दोष कहो कौनको दीजिये रे ।
संत तो चन्दज्यों अंगशीतल सबै, जीवआपही आपमें छीजियेरे॥
नीरके पीयेते प्यास मिटि जात हैं, डूबि मरै तो दोष कैसा ।
कहैं कबीर ये दोष कहु कौनको, जीव पाताल लै न्यायबैसा ॥
कामकी अग्निमें जीव सब जरत हैं, ज्ञानविचार कछुनाहिंबूझे ।
खोय प्रतीत अरु बोय बाजीदई, शब्द मानै नहीं काल सूझे ॥
झूंठको थापि करि सांचको उत्थपै, झूठकी पक्षको गहेगांठी ।
कहैं कबीर नर अंधचेतै नहीं, कालकी चोट यों खाय डाठी ॥
कामबलवानजगमाहिं योद्धासबल, बीजविस्तार तिहुँलोककिया।
स्वर्गऔमृत्युपाताल सबघेरिया, जीवजलथल सब मारिलिया॥
खंडब्रह्माण्ड सो जीव सारागया, रहा कोइ एक जो कोटि माहीं।

कहैं कबीर गुरु शरन गहि ऊबरा, सो विषधारमें बहा नाहीं ॥
करै प्रतीत सो खाय खोटा सही, रहै निर्भय तहां चोर लागै ।
अग्निके संगमें ज्योंघीवपिघला चलै,कामिनी संग यों कामजागै॥
काम बलवान सब जीव अंधा किया,पडामनस्वार्थी संग झूलै ।
कहैं कबीर कोइ संतजन ऊबरे, नाम निर्बाण नहि पलक भूलै ॥
नैनकी चोट तो बहुत करडी बहै, चोटसूं ऊबरे संत कोई ।
शील सन्नाह करि ज्ञानको खड्ग ले शब्दगुरुदेवके सुरति पोई ॥
शब्द विचारका कोट नीका किया, तासुके ऊपरे चोट नाहीं ।
चोट तो तासुको लागिहै आतमा, कपटकी कतरनी रहैमाहीं ॥
जीवके बांधने एक नारी बनी, दूसरा और नहीं बन्ध है रे ।
ज्योंचोरको रोकने एक खोडा घना,नहिंकाठबिना दूसराफंदहैरे ॥
ऊबरै एककोई कोटिमें संत जन, कीलको काटि हरिनाम लागै ।
कहैंकबीर फिर फन्दमें ना पड़े, शब्द गुरुदेवके सुरति जागै ॥
तीनही लोक तहाँ एक नारी बनी, स्वर्ग अरु मृत्यु पाताल माहीं ।
चारहूँ खानका जीव परबस पड़ा, नारिविन दूसरो फन्दनाहीं ॥
मृत्तिका एक और घट बहु भांतिके, मोहिनी सकलमें एक दीसै ।
कहैं कबीर कोइ सन्त जन ऊबरै, दूसरा जीव सबकाल पीसै ॥
नारिभगद्वारमुख बिन्दुनहिंदीजिये,जगतकीकस्ताननहिं जोरभाई।
ज्ञान वैरागि अरु भक्तिसो पलटिये, एकदिन काजसो सिद्धपाई॥
पांचको उलटि मन अरु पवनको, संत अनेक यों पार हुआ ।
सहजही सहजदरिआवमाहींमिला, कहैं कबीर ते नाहीं जूआ ॥
दास मनोहर नहीं यकरंग रहत है, करै फिरकंट ज्यों रंग केता ।
गहै वैरागअरु चढै आकाशको,गिरै धरनिमाहिं फिर नाहिं चेता॥
मानकीतानमें खायगोतासही,कांचअरुस्फटिक ज्यों फूटिजावै ।
कहैं कबीरजनहीर कहँ पाइये, इन्द्रियाद्वारमनउलटि आवै ॥

मिहरकरमिहरकरमिहरकर महाबली, जीवकूं शरणअब राखतेरी।
पिसनपांचप्रबल सोबसि मेरे नहीं, सन महानंतकी सबल फेरी ॥
तरसअब कीजियेसुख मोहिदीजिये, दयाकरिजीवकोराखिलीजे।
दासकबीरकी बिन्ती साम्भलो, देवकरुणा मई दरश दीजै ॥
सांई बारही बार मैं कहतपुकारिके, दरदसों दरसदेओ नाम तेरा।
पाचको नाथि करि साथराखौसही, विनादीदार दुखप्रानमेरा ॥
काल अकरालकी चोटजोराबहै, विनानिज देवकहो कौन राखै।
दास कबीर यह बीनती करत हैं, बारहीबार रस राम चाखै ॥
तुही तू तुही एकसमरथ धनी, तुम विना और कोइ नाहिं मेरे।
काम अरु क्रोधमदलोभ बैरी सबल, रैनि दिनजीवको रहैं घेरे॥
त्राहि पुनि त्राहिमें रैन दिनकर हूँ, मेहरिकरि आपनीशरणलीजे।
दासकबीर यह बीनती करत है, देवकरुणा मई नाम दीजे ॥
होय निरपक्ष सबपक्षकूं त्यागकरि, रहै मस्तान गुरुज्ञानमाहीं।
शील अरु सांच संतोष हृदयधरै, कपटकरतूतके निकट नाहीं॥
कपटकरतूति तहाँ रामराजी नहीं, सांचकरतूति सब साधु गावैं।
कहैं कबीर यक सांचको ले रहो, वेद कितनैं सब साँच गावैं ॥
जगत् अरु भेषके पक्षमें ना पड़े, रहैनिर्पक्ष सोइ युक्ति योगी।
फेरिमनपवनको घेरि पांचोपिसन, प्रेमसुखधामजहांप्राणभोगी ॥
जहाँ आयो तहाँ दुख है बहुघना, पक्षकीलाय सब जीव छीजे।
कहैं कबीर कोइ सन्तजन सूरमा, होय निर्पक्ष रस अगम पीजे ॥
राम निर्पक्ष निर्पक्षही साधु है, होय निर्पक्ष निर्पक्षही माहीं।
साँचको परसि अरु झूठको त्यागिये, साँचकी पक्षकहुँदागनाहीं॥
साँच सहजैतिरे झूठमें बह मरे, झूठ प्रपंच सू जगत भाता।
कहैं कबीर कोई संतजन जौहरी, छाड़ि प्रपंच निजनामराता ॥
भेषको पहरिकरि भर्म भूलैमती, भेष पहिरे कछु सिद्धि नाहीं।

काम अरु क्रोध मदलोभमाहीघणा, शीलअरु सांचसंतोष नाहीं॥
कपटके भेष सो काज सूझै नहीं, कपटको भेष नहीं राम राजी।
कहैं कबीर नरसांच करनी विना, कालकी चोट पौखायताजी॥
भेष अवधूत अरु भूत माही वसे,जीवकूँ बावला करि दिआरे।
नहिंबोलनेसुधिअरुचालनेखबरिनहीं,बशिनहींतहाँपांचवलधियारे॥
घाटियांदोयतहांतहुत साधनी, सांकरीतासुकेबीचमेंउलझियारे।
कहैंकबीरनरपन्थको भूलि करि, सुरतिका सूतनहिं सुलझियारे॥
तिलकमाथे दियाहाथमें लाकड़ो, भजनका भेदतो नाहिं पाया।
शीलअरुसांचसंतोषअन्तरनहीं, कनक अरु कामिनीजहरखाया॥
गूदड़ीपहिनकरिबगआसनकिया, माछलीगटकनेकोसुरति भारी।
कहैं कबीर जब काल गढ़घेरिहै, कौन गति होयगी जीवथारी॥
हाथके माहि तो सुमरनी फिरत हैं, जीभहूँ फिरतहै मुखमाहीं।
दास मनोहर तो चहुँदिशफिरत है,मनअरु पवनकी गमनाहीं॥
निरखता भीति अरुगोरडीछतरडी, नागिनी माहिंफौंकारमेले।
कहैं कबीर यह भजन कैसे करै, नीदके आश्रय जीव खेले॥
शील अरुसांचसंतोषकाभेष करि, क्षमा अरुदयादिलमाहिधारो।
झूठ अरु कपट दिलते दूरि करि, सत्यका शब्द मुखते उचारो॥
साँचका भेष यह देख सतगुरु कहा, संत अनेक यों पार हूआ।
कहैं कबीर सुखधाममांही मिला, बहुरि विषधारमें नाहिं मूआ॥
भेषकूँ पहिरि करि जगतधूता सबै, नामका आसरा नाहिं नेरा।
औषधोंबूटियांलागिभर्मत फिरै, क्यों छूटिहै जीवका भर्म फेरा॥
मारता धातु हरताल तांबे सुरा, यंत्रा मंत्रा बुधि खोई।
कहैं कबीर नर स्वांगकोपहिरि करि, अंतको बेरियोंचल्या रोई॥
भेषकोपहिरिकरिजगतधूतासबै, एकनामनिर्वाणउर नाहिं आशा।
औषधो बूटियांलागिभर्मत फिरै, क्योंछूटिहैं जीकाकाल फाँसा॥

और डहकायकरिआप डहका फिरै,जीवका भलाक्यौंहोय भाई ।
कहैं कबीर नरस्वांगकोपहिरिकरि, साधुकी राह नहिं हाथ आई ॥
संत पूरा मिलै जीवको तारि है, वासना जीवकी खोवै ।
नाम उपदेश अरुभर्मनादूरिकरि, पाचको पलटि भवपार होवै ॥
मिलै अध बेसरा इन्द्रिया स्वार्थी, जीवबहकायकरि टूकखावै ।
आपुभव सिन्धु औ जीवको लेवहै, कहैं कबीर नहिं पार पावै ॥
योगकी युक्ति तो मूढ समझै नहीं, स्वांगकोपहिरिकरि सिद्धहूआ ।
ज्ञान वैराग अरु दया जाना नहीं, वासना बीज तहां जाय मूआ॥
मान मस्तान अरुद्वेष माहीघना, आंठि अभिमानकी नाहिं छूटी ।
कहैं कबीर सो पार कैसे लहै, माहिली बाहिली चारि फूटी ॥
अंधसाधुपदछाडिसंसारमेंघीसपडा, कौंडियाँख्यालमोरतनखोया।
जन्म अरुमरनकादुखसिरपरसहा, योंमोहकेमहलमें जीव सोया ॥
अल्पही भोग अरु अल्पही जीवना,ज्ञानविचार कछु नाहिं कीया।
कहैं कबीर यों बूडि विषधारमें, छाडि सुखसारको जहरपीया ॥
प्रेमके पंथको भूलि उलटा पडा, बँवनको खायकर फूलि बैठा ।
गयो वैराग अरु वन्दगी नाबन्यो, कर्मके कीचमें गला हैठा ॥
नरकमें जानकी टेक गाढ़ी गही, दोष निर्दोषको धार माहीं ।
कहैं कबीर सो सुखसार कैसे लहै, छांडिसुखसारकूं जहरखाई ॥
ताहि उगालकरि फेरले खात है, देख मनकूकरा पडत भारी ।
शब्द अरुघेसला कानिमाने नहीं शर्म सूझै नहीं होत ख्वारी ॥
जहाँका ऊपजा तहां फिरि आव्या, मायकारूप फिरिनारिकीया ।
काल अकरालकी चोट छूटै नहीं, कहैं कबीर धिरकार जीया ॥
नामनिज नीरबिन पीर पावै नहीं, पाचसोरांचिकरिसांचखोया ।
शब्दकी बुन्दके रस प्रवसभया, यो मोहके महलमें जीवसोया ॥
कामअरु क्रोध मदलोभमाहीघना, कनक अरुकामिनीरंगराता ।

कहैं कबीर सोइपार कैसे लहै, कालकी चोटकूं फेरि खाता ॥
अंध ज्ञानवैरागअरु भक्तिको कहत है,रहसतोएकनहिंहाथ आवै ।
फिरत कडछी जैसे पाकके बीचमें, रसके स्वादको नाहिं पावै ॥
ज्योटिलीकोदेखिकरिदिल्लीकीनकलकहै,तासुकीनकलकोइऔर ठाने ।
कहैं कबीर कोइ भेद पावै नहीं, भेद तो देखने हार जानै ॥
वेद वेदांत अरु कथत भागवतको, अर्थ अनुभवतणांकरतनीका ।
ज्ञानवैराग अरु भक्तिको कहत है, रहतर नामबिना सबै फीका॥
कामिनीकुबुद्धिउरमांहिकांटाघना एकनामनिर्वाणउरनाहिंटीका ।
कहैं कबीर सो पार कैसे लहै, कनक अरु कामिनी हाथबीका ॥
रांड़िया खेलमें रांड़िया होयगा, खेल अवधूतका होय न्यारा ।
खान अरु पान वशी ते जीवहै,कहो क्यों होय भौ सिन्धु पारा॥
चालताजमींपैअरुकहत आकाशका, कहोक्योंमानिहैसाधु सोई ।
कहैं कबीर यह संतका शब्दहै, कहै ज्यों रहै अवधूत सोई ॥
कहत वैराग अरुराग छूटै नहीं, पांचसों राचिकरिजीव खोया ।
इन्द्रियास्वार्थी शब्दअनुभव कथै, पदसो बांधिकरिजीव खोया॥
नाम निर्गुण कि है रहत हैं गुणमई,शिष्य शाखातणी भूख भारी।
कहैं कबीर जब काल गढ घेरिहै, कौन गति होयगी जीव थारी॥
राग अरु द्वेष की चौतरा साजि करि, तासुके ऊपरे जीव बैठा ।
झूठको थापिकरि सांचको उत्थपै, अज्ञानकी केन्द्र गरकपैठा ॥
रागअरु द्वेषका चौतरा खोदिये, ज्ञानकूदाल सोढाह भाई ।
कहैं कबीर तब साधु पद पाइये, मुक्तिके महलमें सहज जाई ॥
पांच अरु तीनको करत निषेद नर महलचौथा तणी बात गावै।
रहत रजमा बिनाकहतर झूठी सबै, होय अवधूत तो कहत भावै॥
जेनाम रसना रटैपापपलमें कटै, कनक अरुकामिनी त्याग दोई।
कामअरु क्रोधमदलोभ को त्यागि नर,कहैंकबीरयोंसहज सोई ॥

कहतको सूर अरु रहतको कूडहै, रहतबिनकहतकिसकामआवै ।
रहत रजमा विना कहत झूठी सबै, पांच फूटा फिरै काल खावै ॥
पांचको वसकरै नाम हृदय धरै, मुक्तिकी राह क्योंसहजि आवै ।
कहैं कबीर कोई सन्त जन सूरमा, कहत अरु रहत तब एकभावै ॥
ज्ञान वैराग विनु कूफ्रफंद टूटै नहीं, ज्ञान वैराग सोकुफ्रफंदटूटै ।
ज्ञान वैराग बिन जीव छूटै नहीं, ज्ञान वैराग सो जीव छूटै ॥
ज्ञान वैराग विन पीव पावै नहीं, ज्ञान वैराग सो पीव पावै ।
ज्ञान वैराग बिन काज थावै नहीं, ज्ञान वैराग सो काज थावै ॥
बिनावैरागकहोज्ञानकिसकामका, पुरुषबिननारिनहिंशोभापावै ।
स्वांगते साहु अरु गति है चोरकी, करै तब चोरिया शिर कटावै॥
भेष तो साधुअरुकुबुधि माहीघणी, कुबुधिको कोथली नाहिं छूटै।
शील अरुसाँचसंतोषअन्तर नहीं, कहैं कबीर तब काल कूटै ॥
कहनको साहु असगति है चोरकी, साहुजी कहत नहिं शर्मआवै।
झूठही कहत अरु झूठही रहत है, रैन दिन झूठमें जन्म जावै ॥
मानके आसरे फूलकरि बैसिया, इन्द्रियास्वाद मनमाहिं भावै ।
कहैं कबीर ते साहु क्यों बोलिये, यमरायके खेसले खूब खावै॥
ज्ञान वैराग बिन शब्द चालै नहीं, चढ़ कमान बिनु तीर कैसा ।
उज्वला दीसता द्रव्यखोटकारुपया, तासुकाकौनगनि देइ पैसा॥
कठिन करतूतिपुनि कहाका होत है, रहतर जमाविनाशब्दझूठा।
कहैं कबीर जन काजतबही सरै, पाँच मन मनसा फिरै पूठा ॥
तुरंग रागातलै कान मोती झुलै, पाँच हथियार तहां बांधिसोई ।
मालमोतियातणीसौजआछावनी, पणिविनाकारण रहै पुरुषकोई॥
नारि सुख नालहै गर्भ तो नारहै, बिना वैराग तो शब्द कांचा ।
कहैं कबीर ज्यों पुरुष हैहीजड़ा, बिनाकरतूतिनहिंपुरुषसाँचा ॥
शब्द अनुभव करै माहिंप्रचोधरै, मन अरु पवनकी युक्तिआनै।

ज्ञान चौकस कहे सैन चौथे गहे, सीस सतनामकी छाप ठाने ॥
कनक अरु कामिनी रेख माहीघणी, भायतृष्णातनीमीटिनाहीं ।
कहैं कबीर सब झूठ ही बोलना, आप है कालकी डाढ माहीं ॥
पवनको साधि करिकरतउपाधिनर, बासना बीजतो नाहिंछीजे ।
दूध अरु भातफिर ओगरामागता, दास मनोहरका लाडकीजे ॥
कहत है योग अरुभोगको गहत है, योग को मूल तो हाथ नाहीं।
कहैं कबीर नर करत आजीवका, खान अरु पान है चित्त माहीं॥
दर्दमन्द दर्दके चोटको जानि हैं, वे दर्दको चोटकी खबर कैसी ।
पीवकी चोटको बिरहनी जानिहै, रैनदिन पीवमें सुरति बैसी ॥
श्रवणअरुनयनसुखबैनमें बसत है,पीवबिन और नहिं बात आवै।
कहैं कबीर यह विरहनी अंग है, रैनदिन निरखता पंथ जावै ॥
नीर बिनुमीनअरुचन्दचकोरबिन, सीपकोस्वातिकीएकप्यासा ।
धरणिके नीर नहिं नेह पपीहरे, बिरहिनी एकयों राम आसा ॥
नारिसे पुरुष अरु पुरुषसे नारि है, सुरतिकीडोरज्योंएक होवे ।
कहैं कबीर यह विरहनी अंग हैं, रैनदिन पीवका पंथ जोवै ॥
योगकी युक्तिको रोगिया नाल है,रोगकी खानितहां योगनाहीं ।
कूडिया कंथिया काज सीजे नहीं,कहत कपूर अरुहींग खासी ॥
नाम निर्वाणतहां कामकहाँपाइये, कामनाकुबुधितहांनामकैसा ।
कहैं कबीर नर जहरको खात है,शब्द अनुभव करेफूलिबैसा ॥
योगकी युक्तिकोरागिया नाल है,रोगकी खानि तहां योग कैसा।
कनकअरुकामिनीखानगहिरीखरी, तासुके ऊपरे जीव बैसा ॥
मूलिया खायकरि करतउदगार नर, कहत कपूरकी बासआवै ।
कहै कबीर एका दृष्टि देखये, कनक अरु कामिनीजहर खावै ॥
शब्दको मानिहै कौन पर्माण है, वेदांत सिद्धांत तहां एकमेला ।
त्याग वैराग अरु शीलसंतोषबिनु, करतज्योंठेलियाबालखेला ॥

पीवको परसता कष्ट बहु होत है, पीवकी सेज नहिं खेलहांसी ।
कहैं कबीर रहत रजमा बिना, शब्दअनुभवकियाबांधिजासी ॥
त्यागवैरागअरुहरतरजमाबिना, शब्दअनुभव किया कौन मानै।
नूर अरु तेज मन पवन कूं कथतहै, महल चौथातणी बातठानै॥
खेतनिपदे हुई चौडेही जानिये, शीलअरु साँच संतोष आवै ।
कहैं कबीर एता दृष्टि देखिये, वेदांत सिद्धांत सब साधु गावै ॥
सोवता होय तो जागि है बापुडा,जागता सोवता कहाँ जागै ।
मान मनमाहिं अभिमान ज्ञानी हुआ,शब्दअवधूतकाकहाँ लागै॥
कहतअरु सुनतसबअवधिपूरीभई, अनुपाइनीभक्तिनहिंहाथआई ।
कहैं कबीर ये ज्ञान सब थोथरा,जीवका भला क्यों होय भाई ॥
कहतअरुसुनत सबअवधिपूरीभई, उलझिसुलझिनहींएक आंटा ।
शीलअरुसांचसंतोपअन्तर नहीं, कामनाकुबुधिउरमाहिं कांटा ॥
अग्निकेसंगज्योलाखपघिलतचलै, योशब्दकोसुनतटुकचेतहोवै ।
कहैंकबीरनरपडै जबआंतरा, लाल की लाखनहिं उलटि जीवै ॥
करत आचारअरुखबर तनकी नहीं, सदा नौ द्वारमें बहै आमें ।
नाकमें रीट अरुआँमेंकीचड़ा, सदा ठेठी बहै कान तामें ॥
हाडसुखलार अरु मूत्र विष्ठा बहै,करत अभिमान तू देख जामें।
कहैं कबीर नर चेत सोवै कहाँ, होयज्योंपाकभजिसन्त नामें ॥
फोडिपाषाण को दूजी हरिबीच करि,आपकर्ता हुआ देखु दूजा ।
तोडि सरजीव अरु पूजिनिर्जीवको, कहो क्यों मानिहै रामपूजा॥
कर्म मार्ग चढे सांच बूझै नहीं, मानता है मैं करत पूजा ।
कहैं कबीर नर अंध चेते नहीं, फूटि चारो गई पडा दूजा ॥
जागती जोति तहाँ छूत लागे नहीं, छूत लागै तहाँ भर्म भाई ।
कर्म अरुभर्ममें जीव जूझै सबै, चार अरु असी कापडा खाई ॥
शोचके शब्द का भेद पावै नहीं, इन्द्रिया स्वादसब जीवलागा ।

कहैं कबीर तहाँ जागती जोति है,कर्म अरु भर्म सब दूर भागा ॥
हदके जीव सो बोलना कौनसा, बात बेहदकी कहा जानै ।
प्रवृत्ति प्रपञ्चमें रैन दिन जूझना, शब्द अवधूतका कहा मानै ॥
दृष्टिदीसै तहाँ कालका जाल है, नामनिर्वाण नहिं हाथ आया ।
प्रेम प्रकाशका भेद पाया नहीं,कहैं कबीर तहाँ सहज बिलाया ॥
आपनी आपनी खालमें सबमस्तहै, चार अरु असीका जीवसारा ।
करत आचार तहाँ गरकमनहोयरहा, होय उदास नहिं होय पारा ॥
सूकरा कूकरा तनको पायकरि, शूकरा कूकरा भोग भावै ।
कहैं कबीर यों नर्कमें झूलना, बिना सतसंग नहिं पार पावै ॥
इश्क सांई तहां तर्क वजूद है, इश्कवजूद तहाँ नर्क सांई ।
योगिया यतियां शेष संन्यासियां, भेषहूं देखिये बहुत माहीं ॥
बिनाही बन्दगीविहिस्त पावैनहीं, बन्दगीकरत नहिं खेलहासी ।
कहैं कबीर ये इश्क वजूद का, दोजखकी राहको लिया जासी ॥
तर्क वजूद सो इश्क सांई करो, छाड़ि बदफेल रस एक पीजे ।
मनीको मारिदिलमाँहि नेकी गहो, भिस्तिकी राहकूँसोधिलीजे ॥
सबआपपैदाकियाघटनहींफोडिये, फर्जन्दसब आपका देखभाई ।
कहैं कबीर यह सतका शब्दहै, विहिस्तके राह को सहज जाई ॥
मियांजीजीवतामारिकरिकहत हलालहुआ, मुर्दारनहीं खूबखाना ।
मिहरिको दूरिकरिकहर दिलमेंधरी, दोजखकीराहको सहीजाना ॥
नफसके वास्ते कुफ बहुत करतेहो, ज्वाब दर्गाहमें भरै कैसा ।
कहैं कबीर इन्साफ तब होयगा, मार दर्गाह में खूब बैसा ॥
मियाँजीराहकोछाड़िबेराहक्यों, चलतहो ज्वाबदर्गाहमेंनाहिंआवै ।
करत बदफेल दिन चारिके वास्ते, देखि वजूद क्यों शाक खावै ॥
मुसलमानईमानसो पाककमालभरो, जीवकोमारिकरिनाहिंखाना ।
नफसशैतानको मारिकरिदूरिकर, बावरे कहैंकबीरयोंभिश्तिजाना ॥

मियाजीआबकानीपनाहक दर्गाहमें, पिशाबकानीपनाहक्कनाहीं ।
कहर कोदुरि मिहरदिलमें धरो, यो बन्दगी करत कबूल सांई ॥
पांचबिसमिलकरो पाकरोजा धरो, गुस्सेका गला तूका भाई ।
कहैं कबीर यह सत्यका शब्द है,विहिस्तकी राहकूं सहज नाई॥
जैनके मांहि तो खैन पैदा हुआ, खैनका रोग तो जाय नाहीं ।
कण बिना तूसडा कूटते हैं सदा,कर्ममें लीन नहिं सांच पाई ॥
दयाको कहै अरु सदा निर्दई रहै, तोडि सर्जीव नरजीव पूजै ।
कहैं कबीर यों जन्मका आँधला, सांच अरु झूठ नाहिं सूझै ॥
खैनके रोगते श्वांस बैठे नहीं, श्वांस बैठे बिना कहां साता ।
नामनिज औषधीनिकट न्यारीरही,छाडि निजऔषधी कर्मराता ॥
आपप्रकाश बिन कहा नहीं ऊपजे, कालके चक्रमें खाय फेरा ।
कहैं कबीर यों जैनमें खैन हैं, नाम निर्बाण नहिं निकट हेरा ॥
कौड़ियां कौड़ियां जोड़ी करि एकठी, खाय खर्चै नहीं मूलपापी ।
धरै घरमाहिं फिर ब्याज बाढो करै, रैन दिन माहिले बुरीथापी ॥
दोयगा सर्प अरु भूत भर्मत फिरै, खाय खर्चै नहीं मूल भाई ।
कहैं कबीर जब ज्वाब कैसे भरे, यमराज के घेसले खूब खाई ॥
शब्द उपदेश मैं सबनकूं कहत हूं, समुझिकरिआपनासुखलीजे ।
राग अरु द्वेषकू दूरिसब छोडिके, आपने जीवका भला कीजे ॥
आय सतसंगमें कुबुधिको दूरिकरि,सुबुधि सन्तोष उरमाहिंधारो ।
कहैं कबीर यह शब्द निर्दोष है, आपने जीवका काज सारो ॥
टेरि पुकारि सब जीवसों कहत हौं, सत्यका शब्द तुम सुनलोई ।
गुरुदेव करतूत गुरु देवही पाइये, शिष्यकरतूतसो शिष्य होई ॥
शिष्य दुर्बुद्धि गुरुदेव क्या दोषहै, शिष्य अवधूत गुरुवार वैसा ।
करै करतूति सो आपनी पाइहै, शिष्यगुरुदेवका काम कैसा ॥
शब्द सांचा कहूं मुक्तका कामना, सांचके शब्दको लाज कैसी ।

आप अरु बाप गुरुदेव अरु शिष्य है,करै करतूतसो पायतैसी॥
सांचके खेलकूं सांच मीठा लगै, कपटके खेलकूँ सांच खारा।
कहैं कबीर ये एकठे ना रहे, दिवस अरु रैन प्रकाश न्यारा॥
आपने आपने सांचसो खेलना, कपटका खेल नाहीं काम आवे।
कपटके खेलसो काम कोई नासरै, अंतकी बेरदुख प्राणपावे॥
बाहिरा भीतरा साफ दिलको करो, मैलको धोय रसराम पीजे।
दास कबीर यों कहत पुकारिके, कपटकी कोथली दूरि कीजे॥
सांच करणी करै सांच मुखऊचरे, दम्भ अरु कपटको दूरिडारे।
शील अरु सांच संतोष हृदयधरै, कामअरुक्रोधमदलोभमारै॥
कनकअरु कामिनी त्यागि सांई भजै, रामतेजे जनाराम गावै।
कहैं कबी जनपार तेही लहै, कालकी चोट फिर नाहिं खावै॥
सांच करनी करै दम्भकूं परहरै, सांच करतूतको संत गावै।
सांच करनी रहै सांच मुखते कहै, सांच दर्गाहमें दाद पावै॥
दया अरु शील संतोष सांचे गहै, झूठ दर्गाहमें दाद नाहीं।
कहैं कबीर जन्म झूठहै जर्दरू, सांचके बीच है आप सांई॥
सांच करनी बिना काज सीझे नहीं, झूठप्रपंच सो जीव राजी।
मानमस्तान अरु खानहै लूनकी, कालकी चोट यों खायताजी॥
शब्द चर्चा नहीं ज्ञानहै घेसला, देखि शैली करो पेट मोटा।
कहैं कबीर यों जानि जड़होयरहो,सुमिरिसतनाममतखायखोटा॥
मिलै जो साधुतहाँ बोलना खूबहै, होय बकवाद तहाँ ज्ञान टूटै।
साधुके बोलने प्रेम सुख होत है, मूढके बोलने काल कूटै॥
रैनदिन चित्तकी वृत्तिकूं घेरिये, युक्ति जानै तिको युक्त योगी।
कहैं कबीर मनपवन कूं फेरिकरि, सदाआनन्दरस नामभोगी॥
सबकपटकूं दूरिकारि सांचकरणीकरो, कपटकरतूतिनहिं पारपावे।
कपटकरतूतसो काज कोई नासरै, सांचकरतूतसो काज थावे॥

सांचकरतूतितहांआप हाजिर खड़ा, कपटकरतूततहां आपनाहीं ।
कहैं कबीर सब संतजन कहत हैं, वेद कितेबहू देख माहीं ॥
नामनिर्गुण कहै रहत हैं गुणमई, मुखसूं कहत नहिंलाज आवै ।
कामअरुक्रोधघटमाहियोधासबल, ज्ञानअरुध्याननहिंरहनपावै ॥
जासुके झूपडे लाय लागेसहीं, झूंपडा मांहि क्या रहै भाई ।
क्रोधसी अग्नि तहाँ देखु प्रकटभई, कहैंकबीर यह कैसी कमाई ॥
कहतभी खूब जो रहित रजमारहै, कहतभी खूब जो सांचबोलै ।
कहतभी खूब सबत्यागि साईंभजे, कहतभी खूब मनमैल खोलै ॥
रहत रजमाबिना नफा नाहीं कछु, कहा आकाशका शब्दबोला ।
कहैं कबीर सुनु शब्द सांचाकहूं, कहा जो प्याजकाछोतछोला॥
सांचके शब्दको सुनत निंदाकरे, झूठके शब्दसूं प्यार होता ।
झूठ अरु सांचएकठे क्यों रहें, जमीं आस्मान नहीं एकहोना ॥
प्रवृत्तिप्रपंचसब जमींका खेलहै, गुणातीतअवधूतका खेलनाई ।
कहैं कबीर कोइ रीझभावेखीझिहै, कहोंगा सांच नहिं झूठ भाई ॥
सांचके शब्दमें पक्ष कोई नारहै, पक्षतो सांचका शब्द कैसा ।
सांचके शब्दमें पाप लागे नहीं, झूठके शब्दमें पाप बैसा ॥
साधुकी चालतो सांच सबकहतहैं, झूठतो साधुकीचाल नाहीं ।
कहैं कबीर यह खेल आकाशका, साधुपद दूरकहुं निकटनाहीं ॥
सांचका शब्द तो एकही बहुत है, बारही बार नहीं बकनाजी ॥
पाषाणके बीचमें तीरलागेनहीं, यों मूढसों बहुत नहीं झकनाजी ।
रैनदिन होत घनघोर वर्षाघणी, चीकटे घडे नहिं पुनगलागै ।
कहैं कबीर तहाँ कर्मकी जोड है, जीवजड होरहा कहां जागै ॥
पाषाणके बीचमें तीर बेधेनहीं, बाहनेहार क्या दोष भाई ।
सुनतहीं सुनत सबअवधि पूरीभई, इन्द्रियाद्वार मनजहरखाई ॥
कर्मसन्नाहकी कडीसजडी जड़ी, ज्ञानगोली तहाँ नाहिं लागै ।

कहैं कबीर तहाँ कर्मकी जाड है, जीवघोर निद्रापड़ाकहाँजागे ॥
आपनी २ बीज अंकूर है, करै करतूति सो पाय तैसी ।
बोई है आम तो आम्बफल खाइहै, बोई है बबूलतो सूलबैसी ॥
पापअरु पुण्य दोउबीज अंकूर हैं, वाहिसो बीजफल हाथआवै ।
कहैं कबीर ये संतका शब्द है, करै करतूतसो नाहिं जावै ॥
सदगति जीवको भलीमति ऊपजे, दुर्गतीजीवकी बुरी आवै ।
सदगति जीव सुखसार साई भजे, दुर्गतिजीवमिलिजहरखावै ॥
सदगतिजीव सतसंगजनबन्दगी, दुर्गतिजीव विषधार पैसा ।
कहैं कबीर ये बीज अंकूर हैं, बाहि है बीज फलखाय तैसा ॥
बुराभी आपना आपही करत है, भला भी आपना आप सारै ।
आपही आपको पारले ऊतरै, आपही आपको बोरि मारै ॥
आपही उलझिकरि बहेविषधारमें, आपहीसुलझिहरिनामलागे ।
कहैं कबीर ये भाव सब आपना, आपही सोयकरि आपजागैं ॥
जीव अज्ञान सबअंध चेतै नहीं, बहे विषधारमें खाय गोता ।
पाप करनी करै नाम उरना धरै, पापके बीचसों फिरै रोता ॥
यार आशनासूं प्रीतिअतिकरत है, रामके जनोंकी करतहांसी ।
कहैं कबीर नर ऊबरे कौनविधि, मारिहैं काल गलडार फांसी ॥
मोहके वृक्षमें जीव सब मगन है, देत हैं अंड तहाँ हर्ष माने ।
काल अकराल तहाँ रैनदिनतकतहै, चलतहै चक्रतहँ सकलभाने ॥
राव अरुरंकसबएकनाके चले, नहिंपावअरुपलककी खबरजाने ।
कहैं कबीर सोइ संतजन ऊबरे, रैन दिन रामही नाम गावे ॥
मोहिके माँहि सब जीव मस्तान हैं, खान अरुपानमें मगन हुआ ।
नारिसूं पुरुषअरु पुरुषसूंनारिहै, अरसअरु परसमिलि नाहिंजुआ ॥
नारिके रैनदिन ध्यान है पुरुषका, पुरुषको ध्यान है नारिकेरा ।
कहैं कबीर यों जीवसबउलझिया, कहो क्यों छूटि है भर्म फेरा ॥

नारिकी बासना पुरुषकी मारिहैं, पुरुषकी बासना नारि खोवै ।
सुरतिमनपवनकोसमिटि साईंभजे, जन्मअरुमरनतबनाहिंहोवै ॥
शीलअरुसांच संतोषकीसेहजले, क्षमा अरुदया दिलमाहिं धारै ।
नारि अरु पुरुषका काम कैसारहा, कहैं कबीर सो आप तारै ॥
जन्मअरुमरनतोभजनबिनुनामिटै, कछुबांटकरिखायतोहाथआवै ।
रावअरुरङ्क सबएक गैले चले, विना हरिभजन सबवाद जावै ॥
बेगही चेतले बावरे मूर्खा, जीवते जीव कछु हाथ कीजै ।
कहैं कबीर नरचेत सोवै कहां, होयगा ढोड़ तब प्राण छीजै ॥
देह तो देख मिल जायगी खेहमें, देहसों काज कछु कीजियेरे ।
रामका भजन अरु जनोंकी बन्दगी, देहधरि लाहडालीजियेरे ॥
चालती घोड़ियाकाज कछुकीजिये, कौड़ियासाथकछुनाहिंजाई ।
प्राणके छूटते पलकमें पारकी, कहैं कबीर सुनुचित्त लाई ॥
बीचउजाड़के पुरुषसक भूलिया, सो भर्मता भर्मता कूपपाया ।
कूपके माहितहाँ नीर तिन देखिये, तिसनीरकेऊपरे लीलछाया ॥
पीवना होय तो पीयले बावरे, यों विनशिहै नीर थिर रहै नाहीं ।
कहैं कबीर फिर नीरनहिं पायहौ, बहुरि वे बानके बीच जाई ॥
दोयदरियावके बीचएककाज है, तासुके बीच एक पुरुष ठाढ़ा ।
एक दरिआवमें सही सो झूलिहै, करो कोइ बन्दगी करो जाड़ा ॥
जाड़ितो जन्म अनेकके जीवको, बन्दगीकरतसोइ पुरुष पूरा ।
कहैं कबीर कोइ ब्रह्मदरियावमें,रहत भवसिन्धुते सदा दूरा ॥
घड़ीघड़ीनरकहत पुकारिके, पलकही पलक नरआव छीजै ।
चेतरेचेत अब अंध सोवै कहाँ, नामभजि नामभजि काज कीजै॥
आगिलगायाअरुपाछिलाथिरनहीं, बहुरिउपजे सोइ फेरजासी ।
दास कबीर यों कहे पुकारि करि,नामभजनाम नहिं कालखासी ॥
अंधचेते नहीं अवधि सारीगई, शीसपर कालका हुआ डेरा ।

पलटा साजका कोईनासरा, गिर्दसे कोट सब आइघेरा ॥
नहीं श्रवणसुनै अरु नैनभी झरत हैं,चालता पांवमें परत आटी।
कहैं कबीरकोइकान मानै नहीं, जरा जब योगनी गहा माटी ॥
चेतरेचेत अबमूढ क्यासोरहा, सठसब अवस्था जाय बीती।
आययमराज जबचहुँदिशिघेरिहै,होयगी तोहिमें बहुत फजीती ॥
देखऔसान यह फेरिपावैनहीं, सुमिरि हरिनामसबतज अनीती।
कहैं कबीर संसारकुल स्वार्थी, नहीं परमार्थी छाड़ प्रीती ॥
चेतरेचेत अब अंध सोवै कहा, खोजगुरु ज्ञानमनजागमेरा।
तात अरुमातसुतबन्धुयुवतीसखा, कहोकालकीचोटमेंकौनतेरा ॥
येमिलेसब स्वार्थी नाहिंपरमार्थी, तासुके बीचतैं किया डेरा।
सबठगोंकाबासहै झूठविशवासहै, काटिमोहफांसीगहोनाममेरा ॥
कहैं कबीर निजनामको सुमिरिले, बहुरि नहिंहोय संसार फेरा।
संतसब कहतहैं अंध चेतैनहीं, मोहके महलमें जीव सोवै ॥
देखहीरो जन्म फिरि पावै नही, काँचके राचने काह खोवै।
वस्तुनहिं पाइहै बहुरिपछताइहै, सीखसुनि लेहु सतमान मेरी ॥
कहैं कबीरजबकालचपेटिहै, होय छिन एकमें खाक ढेरी।
भर्मता भर्मताहाथहीरा चढा, सोकौडियामाहि नै काहि दीधो ॥
देखहीरोजन्म फिरि पावै नहीं, बड़ीनिधि पायकैते कहाकीधो।
विनशिहैं पलकमें आशनाहींकछु, रामभजुरामभजुकाज सीजे ॥
कहैं कबीर नरखायखोटामति, मोहके जालमें कहा छीजे।
देखनिर्मोलको हाथहीरोचढ्यो, चेतरे अंध अब कहां सोवै ॥
भजोभगवानअरुकरोजनबन्दगी,कौडियाख्यालकणिकाहिखोवै।
सुखसारहृदयधरोछारको परहरो, सुरतिसुरझाय जौ मुक्तिपावै ॥
कहैं कबीर नर चूक अवसानको, दावँको खोय करि कहां रोवै।
खतामत खायतू चेतरे बावरे, शीस आई जरा नाम लीजे ॥

सत्यकाशब्दसब संतजन कहतहैं, काटिभ्रमजाल भजिरामजीतै॥
देहतो देख मिलजायगी खेहमें, ये मिले सब स्वार्थीसगी नाहीं।
कहैं कबीर जब काल गढ़ घेरि हैं, तब आपने आपने पंथजाही ॥
देह तो देत है तोहिंचिताघणी, सुमिरिहरिनामअबचेत अंधा।
करतबहुय नयहविनशिहैपलकमें, यादकरिपीवयमकाटिफन्दा ॥
दुःखको रूप अरुराशि औगुन भरी, यादकरहक्कसुखकहाभूल्यो।
कहैं कबीर यादेहसोतरक करि सदा सुख सिन्धुके माहि झूलो॥
देह दुख रूप सुख लेश मात्र नहीं, देहसुखरूपजोनाहिंलागै।
जन्म अरु मरनकी त्रासतबहींमिटै, काल कांटासबैदूरिभागै ॥
धारि इस कामकोकरहरिबन्दगी, मुवाविषधारमें जीव सारा।
कहैं कबीर कोइ कोटिमें ऊबरा, परसि निर्वाण पदहुआन्यारा ॥
गर्भ बासके बीचमें देख रक्षा करी, आबकी बून्दसो पिंडकीया।
अन्न पानी सब भस्म हो जातहै, प्राण सूक्ष्म तहांराखिलीया ॥
उबत दशमास तहां पोना ले दिया, कौलकेबोलकरिजन्मपाया।
कहैं कबीर नर फूलि संसारमें, बिसरि कर्ताको जहर खाया ॥
दीद बरदीद प्रतीत आवै नहीं, दूरिकी आशा विश्वास भारी।
कथा अरु कबित श्लोक रसरी बड़ी, कथैबहुभांतिबूड़ेअनारी ॥
हृदय सूझै नहीं सन्धि बूझै नहीं, निकटकीबात ले दूर डारी।
तत्त्वको छाडिनिःतत्त्वको सब कथै, भर्ममें पड़े सब भेष धारी ॥
जटाधारी घने यती योगी बने, पहिर मुद्रा लिये कानफारी।
एक मौनी रहै एकत्रक त्यागीरहै, एक दराडी रहे एकब्रह्मचारी ॥
एक नागा रहै सर्व लज्या तजै, एक छेद वजूदको नाथडारी।
एक बांधिपगघूँघरू निरत करता रहै, स्वांगकेने करे भर्मभारी ॥
एक आकाशद्रष्टा रहे मौनी रहै, एकउर्द्धबाहू रहै नखधारी।
एक भोगी रहै भोग भोगत रहै, एक बजरकछोटी कसिकाम जारी॥

एक पग बांधिके अद्ध झूलत रहै, एक ठाढेश्वरी कष्ट कारी।
एकगर्भमरते रहे पञ्चाग्नितपतारहे, एक बैठिजलसेज आसनआरी॥
कहाँ लौं कहूँ बहु रूपकोपेखनो, आप आपनपो सबनेपिसारी।
एक अन्न भोजन तजै दूबरंगनरहैं, एकदूध भोजनकरै दूधाहारी॥
एक लूनछोडिके भये अलूनिया, एक बैठिके गुफामेंलायतारी।
एकतिलकमालादियेटोपचोलालिये,एकगुदड़ीपहिरिकरिडिम्भधारी
एक पूजिके मूर्तीगर्भ भारिधरी, एक शंखधुनिआरतीजोति बारी।
सेव कीन्ही सहीदेवचीन्हानहीं, आतमाछोड़िभये जड़के पुजारी॥
पूजिपाषान अभिमान अंधाफिरै, सतचेतनसूं बीच यारी।
योगी पण्डित बडे सर्वगीता पढे, भर्मकी भीति नहिं टरतटारी॥
कहै कबीर कोइ सन्त जन जौहरी, मेटि यमफन्द उठे संभारी।
इतने विटम्ब सो वस्तु न्यारी रही, ज्ञानकोसुरतिसोल्योविचारी॥
अगमकोगमकरोध्यानहृदयधरो, चढशून्यकीशिखरकरजिकिरभाई।
फिक्रकोत्यागिनिजनामसो लागिकरि, सुषुम्ना ताँत तूतू बजाई॥
गगनअरुधरनिबिचख्याल अद्भुतरचा, गैबकीकलासतगुरुलखाई।
कहैं कबीर अब भोग पूरन भाया, ज्ञानके मौज वैराग पाई॥
दौडदौडरेबालकाखबरिकरदर्बारमें, अलमस्तअवधूतफकीरआया।
जाकेछाप अरुतिलकगलमाल मस्तकबना, सत्तकी एकआवाज आया
खोलिपटदेखले जगमगीजोतिहै, नादअरु बिन्दुगढजीतकाया।
कहैं कबीर सर्वांग अविगत मिला, भर्मको छाडिगुरुज्ञानपाया॥
उलटि यंत्र धरो शिखरआसनकरो, देखसो देव दर्गाह माहीं।
जहाँ तेल बाती बिनाअधरदीपकबलै,युक्तिकी जोतसो घटै नाहीं॥
जहाँ तालतांतीबिना रागरमतासुना, पावँबिन निरत झंकारखाहीं।
हाथबिनपांवबिनशीसमस्तकबिना, हुकुमहथियारबिन फौजधाई॥
जहाँ जन्नतेजी नहीं गेंद छाजे नहीं, युद्धमंडा तहाँ घाव नाहीं।

पातबिन पेड बिन वागडम्बररहै, पालिबिनसर्वहिलोलखाहीं ॥
नीरबिनकमलतहँफूलिनिर्मलरहै, पोखबिनभँवरगुंजार खाही ।
नेंवबिनमहलकेदशोछाजाबना, रूपबिन देव जहाँ मौज पाई ॥
कहैं कबीर कोइनिरतिलोनिरखियो, पपिलके पंथमें गयंदजाई ।
दरसबिनदीदपरतीति आवै नहीं, पार की कहैं नब झूठ झाई ॥
हकार सकार झनकार लागि रहै, बैठमनतख्त जहाँ तत्त पाई ।
रूपबिन रेख जहाँ राग रमतासुना, तालमृदंगपर टेर खाई ॥
अजरअरुअमरका अगम बासाबसे, नादअरुबिन्दकीखबरपाई ।
सोधि अस्थूलरहमान जबभेंटिया, नामकी छापजबजायखाई ॥
जहाँ फूहिरी परबोकरै अमीझरबोकरै, प्रेमकी पुरीसो घटैनाई ।
आपकी तापधरि काललागै नहीं, कालकौमारि जंजालखाई ॥
शून्यकी ध्वजा जहाँ फरकखाबोकरै, सेतही गगन गुंजारखाई ।
अगम अरु निगमका खूबछाजा बना, रूपबिनदेवजहाँगमपाई ॥
अखंड अपार जहाँ तारलागारहै, तारमें मिलै सो पार होई ।
भर्मको छेकि परब्रह्मको भेंटिकरि, सुरतिको कोटिब्रह्मांड मोई ॥
कोटके कंगुरे ज्योति झलमलकरै, माझरी शून्यमें फरकखाई ।
दासकबीर निर्वानपद परसिया, मिटिगया झूठ झकझोर आई ॥
सतकबीरका सेतही घर रहै, श्वेतही शून्यमें रमै भाई ।
जहाँ यती औ सतीतो निरतकरबोकरै, प्रेमरस पीवे सोघटै नाईं॥
ताल मृदंग अनहद लागा रहै, सुषुम्नासाधि संतोष पाई ।
विहंगमशब्दजहाँ फरक खावो करै, शब्दकीखोजकोइसंतलाई ॥
जहानकी टेक अस्मान लागी रहै, सहजमें भँवरगुंजार खाई ।
उलटिकरिपवनतहाँ गगनलागीरहै, लूमझरलाल आकाशलाई ॥
देखिधरिध्यान जहाँ इंद्र गवनीकरै, अमीका कुंड हिलोलखाई ।
शब्दका चांदना अगम लागारहै, उठै झनकार ब्रह्माण्डमाई ॥

दासकबीर लौलीन लंका चढे, पलकक्की दरसमें झलक पाई ॥
शून्यकी शिखरपर जिकर ऐसी, घटा घंघोर संजोर बाजे ।
शब्दकीआवाज जहांगाजबानीकहै, भँवर गुँजारनिशिदिनगाजै ॥
हीरा अरु लाल अबेध मोती पडे, श्वेतही शून्यजहाँ सन्तजूझै ।
कहैं कबीर ये पन्थहै अगमका, सोहंगमें सुरति सतलोक सूझै ॥
वाहवाहसिदकेजाऊँमैंमुर्शिदकेकदमोंपर, एकहीख्यालमेंनिहालमनकिया है।
पीरमेराखासामैं मुरीदहूंताका, करिकेमिहरदस्तपंजाशिरदिया है॥
ज्ञानकेकमानबानमारतेंहैंतानि रसोइजनजानैजाकीसुरतिकरिवारवारहुआहै
अकिलकीगिलोलकरिनिजमनठहरायदेख, वैतोरहमानयारसुवाहैनजियाहै ।
साईसर्वज्ञहराओर वेकैववेऐब,कहैंकबीर वैतोसाहिबमहबूबमिया है॥
बदन बिकशत खुशालआनंदमें, अधरमेंमधुरमुस्कात बानी ।
सतडोलैनहीं झूठबोलैनहीं, सुरति औ सुमतिसोसत्यज्ञानी ॥
कहतहूँ मैं ज्ञान उपदेश सबनसूँ, देत उपदेश दिलदर्द जानी ।
ज्ञानकेपूर है रहनिके सूर है, दयाकी भक्तिदिलमाहिं ठानी ॥
और सो तोडिलैएकसोरत रहै, ऐसे जन जगतमें बिरलाप्रानी ।
ठगवटपार संसार भरपूर है, संत हंसकी चाल कहाकागजानी॥
चञ्चल चपल चित्त रङ्ग हैं चीकने, बातमें दूरस दिलकपटजानी।
पेटमें कतरनी दया जिनके नहीं, कहतमें सुध मन बगध्यानी ॥
जीवकी दुर्मती भर्म छूटै नहीं, जन्म जन्मात्र पड़े नर्कखानी ।
कौवा कुबुधि सुबुधि पावै नहीं, कठिन कठोरविकरालबानी ॥
अग्निके पुञ्ज है शील शीतल नहीं, विष अमृत लिये एकसानी ।
कहा भयोसाखीकटो दृष्टि उभरी नहीं,सत्तकीचालबिनुधूरधानी॥
सत सुकृतकी साँची रहनी सही, कागबुग अधमकीकौनबानी ।
कहैं कबीरकोइबिरलाजनसुघड़है, सदाशब्दध्यानसुनैनिशानी ॥
छाडिधोखादियाआपनिश्चयकिया,आदिअरुअंतसाहबएकजानी ।

सुरतिके थाकते निरतभी थाकिया, निरतके थाकते शेषकंपा ॥
शेषके कंपते धरनिभी धसमसी, धरनिके धसमसे मेरुडोला ।
मेरुके डोलता शब्दसायर मिला, उर्द्धमें शब्द घनघोर गाजा ॥
बखत बखतीमिली कर्मयारी जुरी, बांधिपाताल आकाशफेरा ।
सत कबीर तहां ब्रह्म चौरी रचा, सत साइब तहां लिया फेरा ॥
अधर दरियाव दरगाहकुछअजबहै, निर्मली ज्योतिजहांखूबसाई ।
ज्योतिके ओट यम चोट लागै नहीं, तत झँकार ब्रह्माण्डमाहीं ॥
ज्ञानका बाग जहांगैबका चांदना, वेद कितेबकी गम्म नाहीं ।
खुल गयेचश्मजबहश्मसब पशमहै, दीनअरुदुनीका कामनाहीं ॥
कहैं कबीर यह भेद बिरलालहै, झलमलैज्योतिजहांझूलैझांई ।

इति आत्मबोध रेखता प्रथम भाग समाप्त

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष मुनींद्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतायन, धनी धर्मदास चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रमोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानामकी दया वंश-ब्यालीसकी दया ।

अथ श्रीबोधसागरे

अष्टाविंशतिस्तरंगः ।

अथ जैनधर्मबोधप्रारम्भ ।

★

दोहा—तीर्थंकर जहँ देवकह, गुरुजतिहैं जो जैन ।
जैनेश्वर मुख भाख जो, ग्रन्थ है केवल बैन ॥

उत्पत्ति कथावर्णन

भागकूट षट जैन मत, तामें द्वै विधि कीन ।
तीनकाल औ सर्पिणी, उपसर्पिणी है तीन ॥

आदि काल तिहुँ प्रथमके, तामें उत्पति होय।
नामजुगलिया नारि नर, प्रकटहोय द्वै दोय॥
जगत अनादि निधन कहै, तासु न कबहूं नाश।
बीजते रचना सकल हो, यह जगत स्वयमप्रकाश॥
याको कर्तानाहिं कोई, यह जग आपे आप।
कर्म प्रेरि करवाव सब, कर्महि रचना थाप॥
ईश बसै वैकुंठमें, अलग कर्मते सोय।
निर्विकार निर्लेप सो, नाम निरञ्जन होय॥

चौपाई

सो प्रभु करे करावे नाहीं। जिवस्वच्छन्दनिजवशमें आही॥
जीव जन्तु जग नाना जाती। जेते जड चेतन ते पांती॥
कर्म जनित फल भोगें सारे। आतम सबके न्यारे न्यारे॥
जस कछु कर्म करै जो कोई। उग्र छुद्रता के वश होई॥
विश्वमाहिं जड़ चेतन केते। जेते जीव आतमा तेते॥
निर्विकार जो ईश्वर होई। जग विकार ताते नहिं कोई॥
सो नहिं कर्मके बंधन पड़ता। राग द्वेष ता हृदय न बर्ता॥
नहिं उपजाव न पालै कोई। नहिं संहार सृष्टि कर सोई॥
सकल विकारते सो प्रभु न्यारा। जीव कर्म निज्ञ भोग निहारा॥
यहि षटकालमेंदुख सुखठाटा। तीनमें वृद्धि तीनमें घाटा॥
तीन काल सुख स्वर्ग समाना। उगै धरनि कल्पद्रुम नाना॥
पाप रहित मानुष तब सारे। नर सुर दूनों संग विहारे॥
द्वै द्वै प्रकट होय तब सोई। नाम जुगलिया तिनको होई॥
आयू परम दीर्घ रह जाको। सब सुख छाय रहा महिताको॥
कर्म कृपा कछु सो नहिं जाना। राव रंक सब एक समाना॥
सदा काल यक सम उजियारा। कल्पद्रुमकी ज्योति अपारा॥

दिन औ राति कोइ जानै । रवि शशि उडुगण सकल दुरानै॥
चन्द सूर नूर प्रचण्डा । पारिजात आभा नौ खंडा ॥
दरदर पर सुरतरु वर लागे । सकल नारि नर सुखमें पागे ॥

पुरवी बोल-छन्द बरवै

दमक देव द्रुम बमकै महि शशि सूर ।
गमभि रहल चहुँ ओरवा चमकै नूर ॥
पूरन धरनि अकसवा जोति अपार ।
यक समान दिन रतिया नहिं अँधियार ॥
छपे सुरतरुकी जोतिया लगनमें मन्द ।
एक न दीख नखतिया नहिं रवि चन्द ॥
नर तिय सकल जुगलिया सब निस पाप ।
पुण्य पाप कछु नाहीं कर्म न थाप ॥
तब नहिं बोध बिचरवा नहिं गुरु शिष्य ।
कतहु न वरणाश्रम वासव सम दिष्य ॥
कतहुँ उग्र न सदवाँ रंक न राव ।
नर सुर विचर धरनिया कछु न बराव ॥
हिल मिल दोउ दल रहते जनु सँग भाय ।
भोग भूरि कल्पद्रुम काम पुराय ॥
महि सुख छाय स्वरगवा छबि सरसाय ।
हीरा लाल कि स्वनियाँ कविको गाय ॥
नहिं कछु वेदन बानी नहिं श्रुति छंद ।
धर्म न कछु अधरमवा सहजानन्द ॥

इति

अथ चौथा कालवर्णन

सोरठा-लागत चौथा काल, सुरतरु जबही लोप हो ।
नर गह न्यारी चाल, कृत्त चली कृतकाल तिहि॥

चौपाई

चौथा काल लगै जब आई। तबसे रात्रि द्यौस बिलगाई॥
कल्पवृक्ष तब जाहि लुपाई। चन्द सूर तारे दरशाई॥
जिहि औसर निशदिन बिलगाना। भिन्नभाव तब जगको जाना॥
तव मानुष ऊपरको देखे। चकित होय सब कहै विशेषे॥
यह क्या हमरी नजरमें आयो। जो हम काहू देखि न पायो॥
तब कुलकर ब्यौरा कहि देही। चन्द सूर तारे हैं येही॥
कुलकर सोई नाम धरावै। जो मानुष कुलको बिलगावै॥
जाति वर्ण कुल न्यारा करही। तिहि अनुसार धर्म आचरही॥
राजनीति सब भाषै ओई। खेती कर्म सिखावै सोई॥
जब मानुष सुरतरु नहिं राखै। कुलकर तबहि कृसानी भाषै॥
तबते कृतक रही सब लोगू। अन्न उपायके भोजन भोगू॥
जबहिं देव द्रुम गयो दुराई। ईख उगी मानुष सुखदाई॥
भांति भांतिके ऊख गन्ना। जिनको दुख दरिद्र सबभन्ना॥
कल्पवृक्षके बदले ईखा। प्रथमहि जाको मानुष चीखा॥
ताकी खेती प्रथमहि चाली। कुलकरकी आज्ञा सबपाली॥
कुलकर अनुभव ज्ञान गहाई। सब जीवनको राह बताई॥
कुलकर आदि भूप इक्ष्वाका। प्रथम चली जग जाकीशाका॥
इक्ष्वाकू कुलकर कहलाये। प्रथम जो नरको ईख चुसाये॥
अर्थ सहित यह नाम कहाया। इक्ष्वाकू जिन ईख चुसाया॥
तिहि अवसर गुणदोष विभागा। पुण्यपाप मानुषको लागा॥
कर्म दोष गुण तबते पागे। प्रकट करे कुल करके आगे॥
कछु औगुन जब नरमें पावै। निहि कुलकर धिक वचन सुनावै॥
सो धिक वचन सुने नर नारी। निजुमनमें अति होहि दुखारी॥
यतनमें अस लज्जा माना। तजे तुरंत आपनो प्राना॥

अस कहि नर छोडे निजचोला। आज हमें कुलकर धिकबोला॥
कछु दिस बीते मनुष ढिठाई। धिक बोलीसे सो मल जाई॥
जब धिक वचनसे राह न धरही। बहुरिधिकाधिककुलकर करही॥
यतनेहु पर जब शर्म न माने। अधिक दंड तब कुलकर ठाने॥
क्रमही क्रम औगुन अधिकाई। बेडी बांसके दे ठहराई॥
शूली फासो दण्ड प्रचंडा। लगा होन पृथ्वी नौ खंडा॥

इति

अथ वर्णविभाग वर्णन—चौपाई

चौथा काल आनि जब लागा। तबते मानुष जाति विभागा॥
तीन वर्ग प्रथमहि तब कीने। छत्री वैश्य शूद्र कहि दीने॥
दोय प्रकार शूद्र पुनि कीना। एक लीन औ दुतिय मलीना॥
तबते जाति बरन ठहराई। कुलकर भिन्न २ बिलगाई॥
दोय प्रकारके लोग कहाये। यक नर यक विद्याधर गाये॥
मानुष भू गोचरी बखानो। विद्याधर खगोचरी मानो॥
भूगोचरी भूमि पग डाले। उडि अकाश विद्याधर चाले॥
जाति वर्ण दोनोंमें कीना। नर विद्याधर धर्म धुरीना॥
नर विद्याधर जैनी सारे। तिरथंकर सेवा चित धारे॥
पंचम काल लागै जब आई। तब मिथ्यात्व फैल अधिकाई॥
जबते मिथ्या मत सरसाने। तबते विद्याधर बिलगाने॥
चौथे काल माहँ परिपाका। प्रकटे तिरसठ पुरुष शलाका॥
एक सौ उनहत्तर जिव सारा। चौथे काल माहँ औतारा॥
मुक्तिपात्र कहिये नर जोई। चौथे काल प्रकटे सब सोई॥
प्रकटे तबहि तिरथंकर देवा। सुर नर मुनि कर जाकी सेवा॥
सुर सुरपति पृथ्वीपर आवे। तिरथंकरकी अस्तुति गावे॥

ऋषभनाथ है आदि तिर्थंकर । तिनके पुत्रभे भरथ भूपवर ॥
चक्रवर्ति थे भरथ भुवाला । चौथा वर्ण कीन तिहि काला ॥
सब मानुषकी पारख लीन्हें । दायावंत अधिक जिहि चीन्हे ॥
ब्रह्म चीन्हि जिन दाया धारा । तिनको भिन्न कियो तिहि बारा॥
ब्रह्मन तिनको नाम पुकारी । जिनके हृदये दाया भारी ॥
चौथा वर्ण भरथ नृप थापा । तबते चार बरणकी छापा ॥
ऋषभनाथकी केवल बानी । तिहि औसर असकहँ बखानी ॥
भरथ विप्र थापे हैं जाको । चलै जगतमें तिनकी साको ॥
पञ्चम काल जाहि दिन ऐहै । ब्रह्मन जैन विरोधी ह्वैहै ॥
जैन विरुद्ध कर्म सब करिहैं । द्रोह सदा जैनीसे धरिहैं ॥
कछुदिन यहिविधि गयोसिराई । मन मत ब्रह्म न वेद बनाई ॥
जैन विरुद्ध कर्म सब ठाना । हिंसा कर्म करहिं विधि नाना ॥
अश्वमेध गोमेध रचाई । अजामेध नरमेध बनाई ॥
ब्राह्मणजातिकी अधिक प्रशंसा । लिख्यो ताहि ब्रह्माको वंसा ॥
अपने मन सब शास्त्र बनाये । सबते आपको श्रेष्ठ बताये ॥
करि प्रपंच सब थाप अचारा । जैन विरुद्ध पाखंड पसारा ॥
चौथा काल बहुरि जब ऐहै । फेर न ब्राह्मण वर्ण थपैहै ॥
बहुरि प्रतिष्ठा देय न ओही । थपै न जैन धर्मको द्रोही ॥
जाति वर्णकी बात बखानी । अब पुरुषनकी कहो कहानी ॥

छंद त्रिभंगी

चौबिस तीर्थंकर जैनी शंकर बस क्रम कंकर धूल कियौ ।
गुण ज्ञान गहंतं मुक्ति लहंतं अरि हंतंअतिचूल कियौ ॥
दाया उपदेशं रहित कलेशं मोह न लेशं धर्मधनी ।
कुल पद बत्तीशं बानी दीशं जैन मुनीशं भर्म भनी ॥

अथ चौबीस तीर्थंकरके नाम वर्णन

दोहा—ऋषभ नाथ प्रथमै कहो, अजित नाथ कह फेर ।
शंभो अभिनंदन कहो, सुमतिनाथजी टेर ॥
पदम प्रभू क्षुपारसो, चंद्र प्रभू बखान ।
पुष्पदंत शीतल श्रेयस, बासपुज्ञ पुनि जान ॥
बिमल अनन्तो धर्मनाथ, शांतिकुन्थ नाथोय ।
अर्हनाथ अरु मल्लजी, मुनि सुवृत्त कह जोय ॥
निमनाथो नेमनाथ कह, पारसनाथ कहोय ।
महावीर नाथो कहो, अन्त तिर्थंकर सोय ॥

इति

अथ बारह चक्रवर्तियोंके नाम

दोहा—भरथ सगर मघवा कहो, सनतकुमार गनाय ।
सांतिनग्धकुंथनाथजी, अर्हनाथ कहवाय ॥
पुनि सुभूमि पद्मो विजय, हरिखेनो ब्रह्मदत्त ।
सारी पृथ्वी बश करे, कर निजु चक्र गहत्त ॥

अथ नौ बलिभद्रके नाम

दोहा—विजय अचलजी धर्मधर, बहुरि सुप्रभुजी होइ ।
फेर सुर्दशन जानिये अरु सुनन्द कहै जोइ ॥
नन्दमित्र पुनि लेखिये, रामचंद्र पुनि जान ।
पद्म फेर कहि मानिये, नौ बलिभद्र प्रमान ॥

अथ नौ नारायणके नाम

दोहा—प्रथम द्रुपिष्ठ तृपिष्टजी, बहुरि स्वयंभू गाय ।
पुरुषोत्तम नरसिंहजी, पुण्डरीक बतलाय ॥
केवल दत्त बखानिये, फेर लक्ष्मण मान ।
कृष्णचन्द्र नौमें कहो, यदुकुल दीपक जान ॥

अथ नौ प्रतिनारायणके नाम

दोहा–अश्वग्रीव तारक मेरक, मधु निशुम्भ प्रहलाद ।
बलि रावण जरासंध नव, प्रतिनारायण बाद ॥

इति

अथ तिरसठ शलाकापुरुषके नाम–चौपाई

तिरसठ पुरुष शलाका येही । जन जान अति उत्तम तेही ॥
मात पिता तिरथंकर केरो । अरतालीस जीव सो हेरो ॥
चौबिस कामदेव नौ नारद । चौदह कुलकर बुद्धिविशारद ॥
ग्यारह रुद्र यक सौ उनहत्तर । मुक्तिपात्र अवश्य येते नर ॥
इतने इतर और अधिकाई । केवल ज्ञान गहि मुक्त कहाई ॥

अथ जैनशास्त्र संख्या प्रमाण–चौपाई

जैन शास्त्र संख्या परमाना । ऐसे ताको सुनो बखाना ॥
बत्तिस पद सब शास्त्र कहावै । ऐसे ताको लेख लगावै ॥
प्रतिपद ढाई सौ मन स्याही । यक पद पूरन लिखिये ताही ॥
यक चावल कज्जल जौं लीजै । यकश्लोक पूरण तिहि कीजै ॥
बत्तिस पद यह लेख लगाई । सर्व शास्त्र ताते लिखि पाई ॥
कज्जल आठ सहस मन लागे । केवल बैन जैनपति जागे ॥
केवल वानी जैनको जोई । ग्रंथ प्रमाणिक इनमें सोई ॥

अथ अष्टकर्म विधान वर्णन

दोहा–अष्टकर्म जो जैन कह, ताके बंधन जीव ।
भवसागर भोगे सदा, पावे नहिं निजु पीव ॥
ज्ञानी बरनी प्रथम कह, दर्शना बरनी फेर ।
बहुरि वेदनी जानिये, महा मोह पुनि टेर ॥

आयू कर्म बहुरि कहो, नाम कर्म पुनि भाष।
गोत कर्म अंतराय कर्म, बरनौ तिनकी शाख॥
कर्म एकही जानिये, आठभांति सो दीस।
प्रकृत जैन बानी कहै, एक सौ अरतालीस॥

इति

अथ ज्ञानावर्नी कर्मकी पंच प्रकृति वर्णन--चौपाई

मति ज्ञानावर्नी जो कर्मा। सो आबरि राख्यो मतिधर्मा॥
श्रुति ज्ञानी वरनी जब होई। शुभश्रुति ज्ञान फुरे नहिं कोई॥
औध ज्ञान आवर्नी जबही। औध ज्ञान हिय होय न तबही॥
मन पर्जय अबरन उगि आवै। सो मन पर्जय ज्ञान छपावै॥
प्रकटे केवल ज्ञाना बरनी। केवल ज्ञान गोप तिह करनी॥
मतिश्रुति औधअरुमनपरजाई। केवल ज्ञान पंच विधि गाई॥
मति ज्ञान सो नाम बताई। मति बुधिते जेती चतुराई॥
कारीगरी अरु गुन गन जेते। मति ज्ञान करि लहिये तेते॥
द्वितिये श्रुति ज्ञानजिहि कहई। सर्व शास्त्र मुख पाठ जो रहई॥
तीन काल देखे श्रुति द्वारा। जाने सकल अचार विचारा॥
श्रुति केवल ज्ञानी कह सोई। पूरन जो श्रुति ज्ञान ते होई॥
श्रुतिके बली जो पंडित पूरा। श्रुति द्वारे संशय कर दूरा॥
तृतिये औध ज्ञान जब होई। मनकी बात जाने सब सोई॥
जाके मनमें जो कछु भासा। सब औधते होय प्रकाशा॥
चौथे कह मन परजय ज्ञाना। जो मनकी परजायको जाना॥
जहँ जहँ मन छन २ करदौरा। जो कछु फुरै जाय जिहि ठौरा॥
मन परजय सो सबही जानो। सूक्ष्म गति मन कछु नदुरानो॥
पंचम केवल ज्ञान कहावै। ताकी उदय मुक्ति जिव पावै॥
केवल ज्ञान जो हृदय प्रकाशा। सकल भर्म भयकेर विनाशा॥

केवल ज्ञानी साधू जोई । गुप्त बस्तु तिनते नहिं कोई ॥
पंच पौरि जो ज्ञानको कहिया । ताको ऐसो लेखा लहिया ॥
मति ज्ञान जिहि पूरन होई । श्रुतिज्ञान अधिकारी सोई ॥
श्रुति ज्ञानते औध गहावै । औधते मन पर्जय उगिश्रावै ॥
मन परजयते केवल ज्ञाना । मतिश्रुतिऔधजोप्रथमबखाना ।
तीन पौरि लो भ्रम नहिं टूटै । चौथ पौरिते पंचम जूटै ॥
तीन ज्ञान लो हो अरु जाई । मन पर्जय नहिं फिर बिनशाई ॥
मन परजय अरु केवल ज्ञाना । होके बहुरि न कबहुँ लुपाना ॥
याहूमें विधि बहुत बखाना । पौरिहुको नहिं कछु बंधाना ॥
अकसमात कबहूँ अस होई । बिना औध केवल लह लोई ॥
बिन मन पर जयकेवल ज्ञाना । निर्णय जैन धर्मपर माना ॥
ज्ञानावर्ण ते ज्ञान न होई । अवरन भंजि लाभ हो सोई ॥
ज्ञानाबरनी पंच बताओ । बहुरि दर्शना वरनी गावो ॥

इति

अथ दर्शना बरनी कर्मकीना प्रकृति वर्णन--चौपाई

द्वितिय दर्शना बरनी पहारा । जाके ओट अलख कर तारा ॥
चक्षु दरशना बरनी जो बंधा । जोजिव करै होयसो अंधा ॥
अक्षर दर्शना बरनी जाही । शब्द परसरस ब्यौरा नाहीं ॥
औध दर्शना बरनी उदोता । विमल औध दर्शन नहिं होता ॥
केवल दर्शना बरनी जाहा । केवल दर्शन होय न ताहा ॥
ध्यान अरुझि निद्रामें परई । सो प्रानी विशेष बल करई ॥
उठि उठि चलै करे कछु बाता । करे प्रचंड कर्म उतपाता ॥
निद्रा निद्रा उदय पुकारी । सकै न सो जिव पलकउघारी ॥
प्रचला प्रचला जबलो गहई । चंचल अंग लार मुख बहई ॥
निद्रा उदय जीव दुःख भरता । उठै चलै बैठै गिर परता ॥

रहै आँखि प्रचलाते बांधी । आधी बंद खुली रह आधी ॥
सोवत माहँ सुरति कछु रहई । बार बार लघु निद्रा गहई ॥

इति

अथ वेदिनी कर्म द्वैविधिवर्णन–चौपाई

कर्म वेदिनी द्वै विधि हूवा । साता एक असाता दूवा ॥
साता कर्म उदय जब होई । जीव विषय सुखवेदक होई ॥
कर्म असाता उदय जो होई । जिव बेदै दुख खेदत होई ॥

इति

अथ मोहनी कर्म द्विविधि वर्णन--चौपाई

दो विधि मोहनी कर्म बखानी । यक दर्शन यक चारित हानी ॥
दर्शन मोह दुविध उच्चारा । चारित मोह पचीस प्रकारा ॥
प्रथम मोह मिथ्या ती होई । जिव जब और कि और गहोई॥
दूजे मोह मिश्रकी चाला । सत्त असत्त गहै समकाला ॥
तृतिय मोह समकित कही दीनी । जिन मलीन सम कितकह कीनी ॥
दर्शन मोह त्रिविध यह भाषा । सुन पचीस अबचारितशाखा ॥
प्रथमै सोलह कही कषाई । फिर नौबिधिको लेखलखाई ॥
प्रथम कषाय क्रोध कहि दीजै । जाकी उदय क्षमा गुन छीजै ॥
द्वितिय कषाय मान परचण्डा । बिनय बिनाश करे सतखण्डा ॥
द्वितिय कषाय है माया रूपी । जाकी उदय सरलता गूपी ॥
चौथे लोभ कषाय प्रकाशा । जासु उदय संतोष बिनाशा ॥
येही चार कषाय कहीजै । अनुक्रम सूक्षम थूल गहीजै ॥
सो चारो चौगुना करीजै । ताते सोलह भेद भनीजै ॥
अनन्ता अनबाँधिया कषाई । तासु उदै नहिं समकित थाई ॥
जाको कहिये प्रत्याख्यानी । तहां सर्व संयमकी हानी ॥
उदय अप्रत्याख्यानी होई । सो पञ्चम गुन थान कखोई ॥
जोत ज्वलन नाम कहलावै । यथा ख्यात चारित विनशावै॥

क्रोध मान माया अरु लोभा । चारो चार चार विधि शोभा ॥
यह कषाय षोडश विधि बाना । नौकषाय अब निज चितधरना ॥
राग द्वेषकै हासी होई । हास्य कषाय कहावै सोई ॥
मगन होय जबजिव सुखमाही । रति कषाय रस बरनौ ताही ॥
कछु न सोहाय जीवको जहवां । अरति कषाय बोलिये तहवां ॥
थर हर जहाँ जीव कंपाई । भय कषाय सो नाम धराई ॥
रुदन विलाप वियोग दुखारी । जहां होय सो सोग विचारी ॥
जहँ गलानि उपजै मनमाही । सो दुगधा रोग कहाही ॥
त्रिविधि वेद स्थिति वर्णो सोई । नर अरु नारि नपुंसक जोई ॥
प्रथमैं सोई करिये वर्णन । जीव पुरुष वेदीको लक्षन ॥
यथा अग्नि तृण मूला केरी । शिखा उतंग तासुकी हेरी ॥
अल्पकाल अति आतप ताई । अल्पै काल माह बिनसाई ॥
पुरुष वेद धारी जिव ऐसे । धर्म कर्ममें रह नित जैसे ॥
महा मगन तप संयम माहीं । तन तावै तनको दुःख नाहीं ॥
चित औदार उद्धत परमाना । पुरुष वेद धर आतमरामा ॥
बनिता वेदी बहुरि कहीजे । जिमि कोइलाकी अग्नि गहीजे ॥
जिमि कोइलाकी अग्निहोतीखी । परकट धुवां न तामें दीखी ॥
सिलिगिसिलिगि उरअंतरदाहा । रहै निरन्तर अति अवगाहा ॥
तिमि बनिता वदी नर होई । मीठी बोल बोलता सोई ॥
बाहर ताकी मधुरी बानी । भीतर कपट छिद्रछल सानी ॥
कपटलपट करिके अधिकारी । निजगलकुगतिको बंधन डारी ॥
पापकर्म औरनको सिखई । सबको अंध करे सो विषई ॥
आपा हनि औरनको हनता । निज कुमंत्र बहुतनते भणता ॥
बनिमा वेदी ऐसो गुनिये । तृतिय नपुंसक वेदी सुनिये ॥
नगनदाह सम प्रकट न दीसा । गुप्त पजावा अग्नि सरीसा ॥

जैसे हो करसीकी आगी । रहै सदा उर अंतर लागी ॥
महाकलुषता नित उर जेही । वेद नपुंसक धर नर येही ॥
नर अरु नारि नपुंसक माही । भविधि मदनमद जैन कहाही ॥
प्रथम तीन मिथ्यात बखाना । बहुरि पचीस कषाय विधाना ॥
दोनों मिलि अट्ठाइस होई । मोह प्रकृत जानिये सोई ॥

इति

अथ आयुकर्म चारप्रकार वर्णन–चौपाई

आयू कर्महै चार प्रकारा । नरपशु देव नारकी धारा ॥
उदय मनुष आयू नरभोगा । पशुआयूते पशु संयोगा ॥
सुरआयू सुरपदको जाता । नारक आयू नरक निपाता ॥

इति

अथ नामकर्मकी तिरानव प्रकृतवर्णन– चौपाई

छठये नाम कर्म कहलावै । जीवको मूरतवंत बनावै ॥
नाम कर्म यह चतुर चितेरा । मूरतखंच रंच नहिं फेरा ॥
पिंडप्रकृत चौदह परतारा । अट्ठाईस अपिंड विस्तारा ॥
पिंडभेद पुनि चौसठ भाषा । अट्ठाईस अपिंड मिलिसाखा ॥
ते दूनो तिरानबे होई । पिंड अपिंड बयालिस जोई ॥
सो तिरानबे करो बखाना । श्रवण लायके सुनो सयाना ॥
प्रथमहि पिण्डप्रकृत गतिनाना । सुरनर पशु नारकदुखधाना ॥
देवदेह सुरगति उद्यौता । नरशरीर नरगतिसे होता ॥
पशुगतिसे जिव पशुतन पावै । नरक गती ले नरक बसावै ॥
चहुगति पूरबी चारो गनिये । द्वितिये पिंडप्रकृतअब सुनिये ॥
मरनसमय तनतज जिवजबही । परभवगौन तौनकर तबही ॥
पूर्वप्रकृत ल्यावै तिहि प्रेरी । भावी गतिमें ल्यावै घेरी ॥
करे पूरबी आनि सहाई । धरि नवीनतन जिव प्रकटाई ॥

तृतीये प्रकृत इंद्री अधिकारा । यक द्वै त्रै चौ पंच प्रकारा ॥
परस जीव नासा दृग काना । यथायोग जिव नाम बखाना ॥
सूक्ष्म इंद्री धरे जो कोई । मुखनासा दृग कान न होई ॥
सो एकेंद्री थावर काया । भू जल अग्नि बनपती बाया ॥
जाको तन रसनायुत बादी । जलचर शंख जौंक गेडुवादी ॥
ऐसे जंत अनंत जो दीसा । ते द्वै इंद्री कह जैनीशा ॥
जाके तन मुख नाक हजूरा । घुन पमील अरु कान खजूरा ॥
ये सब जिव त्रै इंद्री भाषो । आंखिकानयुत रसजिनचाखो ॥
जाके तन मुख नासा आंखी । बीछूशलभ टीडी अलिमाखी ॥
यहि प्रकारके जिव जो नाना । सो चौ इंद्री जैन बखाना ॥
त्वच रसना नासा दृग काना । ज्यौंके त्यौं पंचेंद्रिय जाना ॥
नर नारकी देव पशुचारी । ये पंचेंद्री करो बिचारी ॥
चौथी प्रकृत शरीर उचारी । औदारिक बसकिय वपुधारी ॥
औदारिक जो उदरसे होई । नर पशु योनि जानिये सोई ॥
देव नारकी भय किय देही । गर्भवास करते नहिं येही ॥
सुर नारक वय किय वपु धरते । देव देह मुनि तपबल करते ॥
जस प्राकृत तैसो तन गहेऊ । चौथी पिंड प्रकृत यह कहेऊ ॥
तनबंधन संघातन दोई । प्रकृत पंचमी छट्ठी होई ॥
बंधन उदय काय बंधाना । संघातनते दृढ संधाना ॥
दोहुकी द्वै साखा द्वै खंधा । यथायोग काया सनबंधा ॥
अब सातमी प्रकृतको कहिये । सांगोपांग तीन मन लहिये ॥
कहो आठमी प्रकृत विचारा । षटविधि रूप शरीराकारा ॥
जो सर्वांग चारु परधाना । सो तनसम चतुरंश बखाना ॥
ऊपर थूल अधोगति ठामा । सोनिगोद पर मंडल नामा ॥
हेठ थूल ऊपर कृश होई । शांतिक नाम धरावै सोई ॥

कूबर सहित वक्र वपु जाको। कुबजाकार नाम है ताको॥
लघुस्वरूप लघुजाहि निहारो। तासु नाम बावन वपु धारो॥
जो सरबंग असुंदर भुण्डा। ताको नाम कहावे हुण्डा॥
अष्टम प्रकृत भेद षट भाषा। अब नौमे कह अस्थिकि साखा॥
प्रथम बखान अस्थि आरंभा। सो षट विधिसे तनको थंभा॥
वज्र कील कीलित संधाना। ऊपर वज्र पट्ट मंडाना॥
अन्तर हाड वज्रमय राचा। सो कह वज्र ऋषभ नाराचा॥
दुतियो हाडजह वज्र सो होई। वज्र मेखते अविचल सोई॥
ऊपर बैठन रूप समाना। ताहि वज्र नाराच बखाना॥
तृतिये हाड जहवज्र सो देखो। रहित वज्र पट ऊपर लेखो॥
नहीं वज्रकी लीजो होई। नाम नराच कहावे सोई॥
चोथे हाड जो वज्र सो नाहीं। अर्धबेध कीली न तेहि माहीं॥
ऊपर बैठन वज्र न जाही। अर्धन राव बोलिये ताही॥
पंच महाडन वज्रसो जिनको। नहिं पटबंधन कीली तिनको॥
कीलित तब दृढ़ बंधन धारे। नाम कीलका तासु उतारे॥
छठी अस्ति अब वर्णन करही। जो यहि काल जीव सब धरई॥
जहाँ हाडते हाड न बंधा। अमिल परस्पर संधिन संधा॥
ऊपर नसा जाल अरु चामा। ताको कहिये छेवट नामा॥
दशमी प्रकृत गमन आकाशा। शुभ अशुभ दो भेद प्रकाशा॥
शुभ उग जीवकर्म शुभ करई। अशुभके उगे कुमारग धरई॥
जैसी प्रकृत उदय जिहि होई। तैसा कर्म करे जिव सोई॥
कहाँ ग्यारही प्रकृत बिचारा। ताको भेद पंच परकारा॥
श्वेत अरु दुति पीत कहीजे। हरित श्याम पांचोगति लीजे॥
जिहि जो संगप्रकृत उगि आवे। ताको तैसा बरण बनावे॥
प्रकृत बारहीको रसनामा। पंच मकार देखिये तामा॥

कटुम मधुर अरु तिक्त बखाना । अमल कषाय पंच परमाना ॥
रसके उदय रसीली काया । निजुनिजुप्रकृति जीव सबपाया ॥
जो प्रकृत जाको उगि आवै । तिमि सो देह रसीली पावै ॥
तेरही प्रकृत गंधमय जाना । दुविधि कुगंध सुगंध बखाना ॥
जो जिव जैसी प्रकृत बंधा । ताके तनमें तैसो गंधा ॥
परसनाम चौदही बर्नीजै । आठ शाख तिहि माहँ गनीजै ॥
चिकनी रूप कोमल कठिनाई । लघुभारी तप शीतलताई ॥
औ चिकनी प्रकृत सुभाया । तब जीव गहै चीकनी काया ॥
रूषी प्रकृति उदयहो जिनकी । रूषी काया देखो तिनकी ॥
कठिनउदयतिन कठिनविहारो । मृदुल उदय मृदु अंग निहारो ॥
तप्त उदय हो तप तन येही । शीतल उदय शीत सो देही ॥
भारी नाम जो प्रकृत उद्योता । सो जिव भारी तनधरि होता ॥
लघुप्रकृतिजिहिजिवकह परई । हरई काया सो तब धरई ॥
चौदह पिण्ड प्रकृति यह भाषा । कहो बहुरि तिहिपै सठ शाखा ॥
अब अपिंडको वर्णन कीजै । अट्ठाइस शाखा गनि लीजै ॥
प्रकृतअगुर लघु जब उगिआवै । जीव अगुर लघु तन तब पावै ॥
जबअपु घातउदय निजअंगा । आपु दुखी नर तासु प्रसंगा ॥
जब परघात प्रकृत परकाशा । तब जिव और कोप्राणविनाशा ॥
जब उश्वासा प्रकृत निवासा । तब जिव लेत श्वास उश्वासा ॥
आतप उदय यथा इन भानू । उदितउदय तब शशीसमजानू ॥
तिस प्रकृत जब प्रकट निहारी । जंगम तनधरि जीवविहारी ॥
थावर प्रकृति प्रकाश जो होई । थिर तनधरि जिव चलैनकोई ॥
सूक्ष्म प्रकृति जाहिको परई । औरके मारे सो नहिं मरई ॥
बादल उदय न तन पावै । सबके मारे सो मरि जावै ॥
प्रजापति प्रकृति प्रकटाई । पूरी परजापति जिव पाई ॥

उदय अपरजा पति जिहिपाही। पूरी देहु तासुकी नाहीं ॥
प्रकृति प्रत्येक उदय जब होई। काय बनस्पति हो जिव सोई ॥
जड़ त्वचकाठ फूल फल पाता। बीज मही तरास कह साता ॥
सातभेद तन जिव तहँ एकू। सो जिव कहिये राम प्रत्येकू ॥
दो विधि प्रत्येक बनस्पति जानो। परतिष्ठित अपरतिष्ठित मानो ॥
धार अनंत रास जो कायक। ताहि प्रतिष्ठित कहै सुभायक ॥
जामें नहिंनि गोदको धामा। अप्रतिष्ठित प्रत्येक सो नामा ॥
काय बनस्पति कह साधारण। सूक्ष्म बादर दुविधि विचारण ॥
संग्रह एक एकही देहा। तिहि कारण निगोद कहयेहा ॥
पिंडनिगोद हैं रास अनंता। पूरित नभको पावै अंता ॥
सूक्ष्म बादर दोय प्रकारा। नित्य अनित्य नाम जो धारा ॥
गोलक रूपी पाँचो धामा। अँडर खँडर इत्यादिकनामा ॥
सो सब नरक पातको जानी। तिनको दुख को सकै बखानी ॥
जीव निगोध एक तन माही। एते जिव कछु वर्णि न जाही ॥
धरे जन्म सब एकै बारी। मरण एकठे मास बिचारी ॥
एक श्वास उच्छ्वासके माहीं। तिनकोजन्म मरन असआहीं ॥
जन्म अठारह बारहै जिनको। मरब अठारह बारहि तिनको ॥
एक श्वास उच्छ्वासहि काला। तिनके जन्म मरणकोख्याला ॥
एक निगोद शरीरके माहीं। एते अमित जीव तहँ आहीं ॥
तीन कालके सिद्ध जो नाना। तिनकै एक अंश परमाना ॥
जीवगोदकी कथा अनंतो। वर्णन इत न होय बुधवंतो ॥
साधारण प्रकृति जब लहई। ताते जिव निगोदतन गहई ॥
साधारण प्रकृत लो बरना। चौदह शाखा तामें धरना ॥
शेष और जो चौदह रहई। ऐसो ताको ब्यौरा कहई ॥
थिरप्रकृत तनमें थिरताई। अथिर उदैते तन अथिराई ॥

शुभ प्रकृतिते सब शुभ रीती । अशुभ उदै ते अशुभ गहीती ॥
जब सुभाग प्रकृत जिव धारा । सो प्रानी हो सबको प्यारा ॥
जब दुरभाग प्रकृति उगि आवै । तिहिलखिसबको जीव घिनावै॥
जब स्वस्वर प्रकृति प्रकटानी । होय मधुर कोकिल सम बानी ॥
जब दुःस्वर प्रकृति तनधारा । साकी धुनि स्वर मनहुँ पुकारा ॥
जब आदेय प्रकृति संजूता । ताको आदर मान बहूता ॥
अनादेय परप्रकृत जब होई । आदर मान करे नहिं कोई ॥
जब जस नामप्रकृति नर पाहीं । ताको यश कीरति जगमाहीं ॥
अयश नाम परकृत्त फुरानी । अपयश अपकीरति जगठानी ॥
जब निरमान चितेरा आवै । सुंदर अंग उपंग बनावै ॥
तिरथंकर प्रकृतिके भेवा । सो जिव हो तिरथंकर देवा ॥
नाम प्रकृति अब पूरण कीने । पिंड अपिंड दोउ कहि दीने ॥
पिंड प्रकृति भाषे दशचारी । ताकी पैंसठ शाख उचारी ॥
अट्ठाइस अपिंड गति बरनो । ते सब मिलि तिरानमें धरनो ॥
तन संबंधी दश पुनि औरा । यकसौ तीन गनो यक ठौरा ॥

इति

अथ गोत्रकर्मकी दो शाखावर्णन-चौपाई

गोत्र कर्म प्रकृति है दोई । ऊंच नीच कुल ताते होई ॥
ऊंच गोत्र उद्यौत प्रमाना । पावै जिव ऊंचे कुल थाना ॥
नीच गोत्रफल संगत पाई । नीच गोत्रगहि जिव प्रकटाई ॥

इति गोत्र

अथ अंतराय कर्मकी द्वि शाखावर्णन-चौपाई

अब सुन अंतराय निरवारा । अधम करम परम ठगहारा ॥
अंतरायकी नौ द्वै धारा । निश्चय एकएक व्यौहारा ॥
प्रथम कहो निश्चयकी बाता ।जासु उदय आतम गुणघाता ॥

परगुण त्याग होय नहिं जहँवा । दान कि अंतराय कह तहँवा ॥
आतम तत्त्व लाभकी हानी । लाभ कि अंतराय सो जानी ॥
जबलो आतम योग न होई । योगको अंतराय कह सोई ॥
बार बार नहिं जगि उपयोगा । उपयोग अंतराय सो भोगा ॥
अष्ट कर्मते नहिं बिलगावै । बीरज अंतराय उगि आवै ॥
निश्चय कहीं पंच परकारा । अब सुन अंतराय व्यौहारा ॥
तुच्छ वस्तु कछु देय न सकई । दान कि अंतराय बल ठकई ॥
उद्यम किये न संपति होई । लाभ कि अंतराय कह सोई ॥
विषयभोग सामग्री जाही । जीवभोग करि सकै न ताही ॥
रोग होय कै भोग न जुरई । भोग कि अंतराय बल फुरई ॥
एक भोग सामग्री सारा । भोग ताहिको बारहि बारा ॥
कीजै सो कहिये उपभोगा । ताहूको न जुरै संयोगा ॥
यह उपभोग घात बिख्याता । बीरज अंतराय सुन बाता ॥
जीवकी शक्ति अंत बताई । सो जग दशामें रही दबाई ॥
जगमें शक्ति कर्म आधीना । कबहूँ सबल कबहु बलहीना ॥
तन इन्द्री बल फुरै न जहँवा । बीरज अंतराय कह तहँवा ॥
ताते जक्त दशा परमाना । जैन धर्मध्वज बैन बखाना ॥
यह व्योहार प्रकृतिकह पंचो । तिहि बिचार भ्रम रहै न रंचो ॥
प्रकृति बिचार वर्ण यह भयऊ । जन जेष्ठ जस बानी कहेऊ ॥

इति अष्टकर्म

अथ अष्ट कर्मकी आयुस्थितिवर्णन–चौपाई

ज्ञानी बर्नीकी स्थिति दीशा । कोडा कोडी सागर तीसा ॥
यह उतकृष्ट दशा परमाना । एकमुहूर्त जघन्य बखाना ॥
द्वुतिय दर्शना वरनी कर्मा । थित उतकृष्ट कहो सुन मर्मा ॥
कोडा कोडी तीस समुद्रा । एक मुहूरतकी थित छुद्रा ॥

तीजा कर्मवेदिनी जानी । कोडा कोडी तीस बखानी ॥
यह उतकृष्ट महाथित सोई । जघन मुहूरत द्वादश होई ॥
चौथे महामोहको मानी । थित उतकृष्ट जैनपति बानी ॥
सागर सत्तर कोडा कोड़ी । लघु थित एक मुहूरत जोड़ी ॥
पंचम आयू कर्मशरीसा । उतकृष्टी सागर तैंतीसा ॥
थित जावन्न मुहूरत एका । जैन ज्येष्ठ कह सहित विवेका ॥
छठये नामकर्म निरुवारी । कोडाकोड़ी बीस विचारी ॥
यह दीरघ आयू थितधारी । जघन मुहूरत कहिये चारी ॥
गोत्र कर्म सातमा कहाये । उतकृष्टी थित बीश बताये ॥
कोड़ाकोड़ी काल प्रमाना । लघु थित एक मुहूर्त बखाना॥
अष्टम अंतराय जो उजागर । कोडाकोडी तीस है सागर ॥
लघु थित एक मुहूरत धर्मा । आयू विविधि भांतिसे बर्ना ॥
दीरघ मध्यम लघु कहि भाषा । काल प्रमान भांतिबहुराखा ॥

इति

अथ सागरप्रमाणवर्णन–चौपाई

सागरको अब करों बखाना । जैनधर्मको सुनो प्रमाना ॥
योजन दोय केर चौकोरा । सागर नाम ताहिको शोरा ॥
दोय सहस्र कोश जिहि माहीं । योजन पक्वा कहिये ताही ॥
सोई योजन सुनो प्रमाना । ताका यह चौकोर बखाना ॥
भेडरोमके तहाँ लेआई । ताका यह चौकोर बनाई ॥
रोमखंड अस करे जो कोई । खंड एक पुनि खंडन होई ॥
रोमभाग सब यकठे करिये । सो सब तिहि सागरमें भरिये॥
रोमखंड जब पूरन कीजै । सागर ऐसो कठिन भरीजै ॥
दाबि दाबिके ऐसे भरना । परमकठिन सो सागर करना॥
चक्रवर्त सेना समुदाई । तिहि सागरपरसे लंघि जाई ॥

दवै न हेठ भारसो पाई। रोमखण्ड पूरण कठिनाई॥
ऊपर हेठ रोम तहँ भाली। रखहु कतहूँ रहे न खाली॥
अस पूरण चौकोर जो होई। सागर नाम बखानो सोई॥
जितने खण्ड रोम गनि लीजै। तितने वर्ष प्रमान करीजे॥
ऐसे कठिन पूर्ण लखि जाको। सागर एक नाम है ताको॥
कोड कोड पर ताको गुनिये। कोडा कोडी सागर सुनिये॥
तीस क्रोड अरु तीसै क्रोडो। सोलह सुन्न ताहिमें जोड़ो॥
कोडा कोडी तीस कहीजे। यों सागरको लेखा लीजै॥
कोडा कोडी सागर बनते। मानुष आयू ताते गनते॥
एते कोडा कोडी जीये। ता पीछे तन त्याग सो कीये॥
ऐसहि कूप समुद्र कहानी। जिमि सागरको लेखा जानी॥
विविधि भांतिसे कीना लेखो। जैन धर्म सो निर्णय देखो॥
लघु दीरघ आयू बहुतेरी। यथाकाल बल तैसो हेरी॥
जबलौं आगे कर्म न टूटै। तबलौं जीव योनिमें जूटै॥
अष्टकर्म रिपु जो संहारे। तासु नाम अरिहंत पुकारे॥
जब ये कर्म जीवते टलके। तिमिर विहाय रूप तब झलके॥

इति

अथ बारह भावनी अथवा आत्मगुण वर्णन

दोहा—प्रथम अथिर अशरण जगत, एआन असुचान।
आश्रय संबर निरजुरा, लोकबोध दुलभान॥

चौपाई

जक्तवस्तु कछु थिर नहिं परसै। देहरूप आदिक जो सरसै॥
थिर बिन प्रीति कौनते कीजै। अथिर जानि ममता तजिदीजै॥
अशरण तोहि शरण कोइ नाहीं। देखो तीन लोकके माहीं॥

तेरो कोइ न राखनहारा। कर्मके वश चेतन निरधारा ॥
यहि संसार भावनी येहा। पर दर्बनसे कीजै नेहा ॥
तू चेतन ये जड सरबंगा। ताते तजो पराया संगा ॥
जीव अकेला आपतकाला। अर्ध मध्य भौन पाताला ॥
दूजा कोइ न तेरे साथा। सदा अकेला फिरे अनाथा ॥
भिन्य सद पुदगलसे रहई। भर्मभाव करि जडता गहई ॥
ये पुदगल रूपीके खंधा। चिदानंद तू सदा अबंधा ॥
अशुचि देखि देहादिक अङ्गा। कौन कुवस्तु लागि तेहि संगा॥
हाड मांस रुधिरो गदगेहा। निरखि मूत्र मल तजो सनेहा ॥
असैं परसे कीजै प्रीती। ताते बन्ध बढै विपरीती ॥
पुदगल तोहि अपन कोइ नाहीं। तू चेतन ये जड सबआहीं ॥
संबरपर रोकनको भाऊ। सुख होनेको यही उपाऊ ॥
चिदानंद हो निर्मल आपू। मिटै सहज परसंग मिलापू ॥
गहि लीजिये आपनो कर्मा। जाते प्रकट होय निज धर्मा ॥
थिति पूरी हो खिरखिर जाई। निरज्वर भाव बढै अधिकाई ॥
लोकमाहँ तेरो कछु नाहीं। लोक आन तू आन लखाहीं ॥
है यह षटदर्बनको धामा। चिदानंद तू आतम रामा ॥
धर्म सुभाव आपनो जानो। आप सुभाव धर्म सो मानो ॥
जब तोहि धर्म प्रकट ह्वै आवै। तब परमात्म पदै लखि पावै ॥
दुर्लभ पर दर्बनको भाऊ। आपा नहिं दुर्लभ सुन राऊ ॥
जौं तेरो है ज्ञान अनूपा। तौ नहिं दुर्लभ शुद्ध स्वरूपा॥

इति

अथ जैनयतिके अट्ठाईस मूलगुण वर्णन

सोरठा-पञ्च महाव्रत सञ्च, सुमति पञ्च परकार है।
इंद्रियाणि दम पञ्च, षट्ट अचार पृथ्वी शयन ॥

तज मज्जन निरधार, बसन त्याग कच लुंचकर ।
लघुभोजन थित धार, दातन लेपन त्यागकर ॥

चोपाई

सब जीवनपर दाया पाला । सत्य वचन बोले तेहि काला ॥
परसे नहिं धन करे ससोई । मदन विकार न व्यापै कोई ॥
सकल परिग्रहको जिन डाले । अधो दृष्टि मारगमें चाले ॥
सूखी भूमि निरखि पद धरही । दयासहित शिवपन्थ विचरही ॥
निरभिमान अनवद्य अदीना । कोमल मधुर दोष दुख हीना ॥
ऐसे सुवचन सदा उचारा । सो जैनेश मुक्तिपद धारा ॥
उत्तम कुल स्रावक आचारा । तासु भौन सूक्षम आहारा ॥
दोष बयालिसको सो टाली । भिक्षा भोजनकी यह चाली ॥
धर्मवस्तु कछु संग्रह धारा । सूखी भूमि निरखि मल डारा ॥
सीत उष्ण दोउ यक सम वादा । गंध कुगंधो स्वाद कुस्वादा ॥
शब्द कुशब्द कुरंग सुरंगा । स्तुति निंदा दोउ यक ढंगा ॥
शब्द मित्र दोउ यकसम भाला । सामा यक साधै तिहुँ काला ॥
अरि हंतो सिद्धौ आचारी । उपाध्याय साधूगुण धारी ॥
पंच परम परमेष्ठी बाना । सदा काल तिनका गुण गाना ॥
दोष विचारिके प्राश्चित करही । कृपा कर्ममें निजु चित धरही ॥
जैनेश्वर बानी अनुसारा । द्वादशांग आदर उर धारा ॥
काऊ सम मुद्रा नित धारे । हृदये सुद्ध स्वरूप विचारे ॥
सूखी भूमि शयन हितकारा । त्यागे त्रिविधि योग ममकारा ॥
पश्चिम राति नींद लघु गहई । धर्म ध्यानमहँ पावन रहई ॥
अंतर बाहर परम पुनीता । लेप नहान त्याग सब कीता ॥
नग्न दिगंबर मुद्रा धारी । विगलित लज्जा लोक विहारी ॥
एक बार लघुभोजन लेही । कच लुंचै तजि दातन देही ॥

इति

अथ जैन यतिकी बाइस परीसा वर्णन

सोरठा–भूख प्यास हिम गर्म, इंस मशक डँस नग्न तन।
अरतिकेर दुख पर्म, चर्जा आसन शयन कह॥
खल वध बंधन बाद, जाँचै नहीं अलाभको।
रोग परस न विषाद, मलमय आदर मान बिन॥
प्रज्ञा अरु अज्ञान, दरस मलीन दो बीसये।
जैन परीसा जान, सहै जाहि रिषि राय नित॥

चौपाई

एकपक्ष जब दिन बित गैऊ। उन ओदर भोजन तब लैऊ॥
विधिवत जौं भिक्षा नहिं पाई। अंग शिथिल मनमें दृढताई॥
पर अधीन भिक्षा ऋषि राया। प्रकृति विरुद्ध जो भोजन पाया॥
ग्रीष्म काल विहाली ठानी। सहै प्यास मांगे नहिं पानी॥
हिम ऋतुमें कम्पै संसारी। बाहर तबहि खड़े व्रतधारी॥
वर्षा वायु शीतको जोरा। सहै सकल नहिं तन मन मोरा॥
भूख प्यास उर अंतर दागै। कोपे पित्त देहज्वर जागै॥
ग्रीष्म धूप अग्नि सो लागे। सहत सबीसन धीरज त्यागे॥
दंश मशा माखी डँसै सर्पा। भाल शृगाल केहरी दर्पा॥
कनखजूर आदिक दुख देहीं। पीड़ा सह दृढ़ता गह येहीं॥
विषय विकार जासु उर भरई। भेष दिगम्बर सो किम धरई॥
महाकठिन यह नग्न परीसा। सहै शील धर जैन मुनीशा॥
देश काल कारण को पाई। जक्त जीव मन व्याकुलताई॥
ऐसी अरति परीसा भारी। सहै जैन मुनिधर्म सँभारी॥
तियदृग तीर शरीर न लागा। जगमें को असजन्म सुभागा॥
को अस जेहि रतिनाथ न चंपा। मन सुमेर मुनिको नहिं कंपा॥
चार हाथ देखत महिं चारे। कठिन कंकरी पायँ विदारे॥

चर्जा दुख सहि मुनि व्रत धरहीं । प्रथम स्वादकी सुरति न करहीं॥
सूखी ठौर शयनको हेरे । निश्चल अंग रहै ऋषिकेरे ॥
कठिन पृथ्वीमें शयन कराई । शयन परीसा पर जय पाई ॥
खल निरदोष साधु को मारे । दुख अनंत दे अग्निमें जारे ॥
समरथ होय सहै दुख सारा । रंच क्रोध नहिं निज उरधारा ॥
हाँसी करहिं दुष्ट मिलि झारी । कहि कटुबचन देहिं बहु गारी ॥
वचन बाण मारैं जब तानी । क्षमा ढाल ओटे मुनि ज्ञानी ॥
छीन भये तन पिंजर रहेऊ । दुख अनंत जब देही सहेऊ ॥
काहूकी नहिं चहै सहाई । प्राणहु गये अयाच रहाई ॥
एक बार भोजन की बेरा । मौन साधि नगरी करि फेरा ॥
बहुदिन बीते न भिक्षा पाई । तिहि अलाभ मन खेद न ल्याई॥
भोग संयोग रोग जब होई । कछु उपचार न चाहै सोई ॥
सहै दुःख नित रहै अदीना । देह विरक्त आत्म लौलीना ॥
कँकरी कंटा पाँय विदारे । रज तृण आंखिनमें भरि मारे ॥
सहै दुःख निज कर नहिं गाढे । तृणपारस विजई मुनि गाढे ॥
तजि असनान होय दुख भारी । चलै प्रसेव धूल भरिडारी ॥
मलिन आपनी देह निहारी । मलिनभाव नहिं जैनाचारी ॥
चिर तपसीबुधि विद्यासागर । गुणगण अतुलित जक्त उजागर ॥
नर आदर प्रणाम नहिं करहीं । तहँ मुनि मलिनभाव नहिं धरहीं॥
ऐसे बुधि विद्या निधि गहिरे । परवादी नहिं सम्मुख ठहरे ॥
आगम अगम अलंकृत जाना । पै मुनीश मद रंच न आना ॥
पालत धर्म बहुत दिन गैऊ । ज्ञानप्रकाश अजौं नहिं भैऊ ॥
कछु विकल्प नहिं मनमें गहई । सो अज्ञान विजई मुनि अहई ॥
मैं चिर घोर घोर तप ठानी । तब बलसिद्ध झूठ कछु मानी ॥
यों कदापि मनमें नहिं बाधू । सोई अदरसन विजई साधू ॥

इति बाईस परीषा

अथ बाईस बस्तु अभक्ष्य वर्णन–चौपाई

बैगन बहुबीजा अरु ओला । बट्टु पीपर पाकर कहि बोला ॥
ऊमर कमऊमर निस भोजन । कदमअयाचतुच्छ फलको गन॥
विष माटी मद मधु अरु मासा । खार चलो रसघोरव डासा ॥
माखन और अँचार कहावै । बाइस बस्तु अभक्ष्य बतावै ॥
इनते अधिक मूल है जेते । भक्षण योग्य न कोई तेते ॥
जिनमें धाम निगोद कहीजै । जीव अनंत न पार लहीजै ॥

इति

अथ जैनसाधु और गृहीको वर्णन–चौपाई

दोय प्रकारके साधु बखाना । दीगम्बर श्वेतांबर बाना ॥
दीगम्बर मुद्रा कठिनाई । सो नरते अव गही न जाई ॥
ताते लोप दीगम्बर भैऊ । श्वेतांबरी अजो रहि गेऊ ॥
अजहूँ गृही दीगम्बर मतको । जाने अपने धर्मकी गतको ॥
गृहीको गृही करे उपदेसा । जैसो गुरू शिष्य पुनि तैसा ॥
श्वेतांबरी साधु बहु तेरे । नाम ढूंढ़िया तिनको ठेरे ॥
जैन धर्मकी बारह पौरी । विविधि रीति देखो सब ठौरी ॥
सबपर श्रेष्ठ दिगम्बर बाना । छुल्लक ताके हेठ बखाना ॥
पुनि दश पौरि सरावक आहीं । सेवा पूजा देखो ताहीं ॥
तिरसठ पुरुष शलाका जोई । पूजा तासु जैन घर होई ॥
तिरथंकरकी मूर्ति बनाई । मंदिर माहँ ताहि पधराई ॥
दीगम्बर कर फेची टूटी । श्वेतांबर फेची मुखपट्टी ॥

इति

अथ स्वर्ग और मुक्तिशिलावर्णन–चौपाई

साठि पटल स्वर्गन में सुनिये । सर्वारज सिध सबपर गुनिये ॥
तापर मुक्ति शिला कहलावै । मुक्त होय सो ताहि समावै ॥

इतर धर्म जो जग विख्याता। कोइ मिथ्या कोइ मिश्रमिथ्याता॥
साठि पटल जो स्वर्गन माहीं। बारहलों मिथ्याती जाहीं॥
जैनी बिना न ऊपर जावै। बारहलों सबही गम पावै॥
जैनधर्म बिन मुक्ति न होई। केवल ज्ञान उगे नहिं कोई॥
स्वर्गनके सुख अमित बताई। रहे देवगण सबमहँ छाई॥
स्वर्गकि थित जब पूरन होई। तब जिव धरणिधरे तन सोई॥
जैसो भाव स्वर्गमें धरई। तैसी योनिमाह जिव परई॥
जो सर्वारज सिद्धको जावै। एकदेह धरि मुक्ति सो पावै॥
जबलों कर स्वर्गनमें बासा। तबलों देह धरनकी आसा॥
चौथे काल मुक्ति जिव होई। पंचयें छठएँ लहे न कोई॥
सुकरम किये स्वर्गको जावै। पंचयें छठयें मुक्ति न पावै॥
ढाईसहस बर्ष बित गयऊ। पंचम काल लगत जो भयऊ॥
उगे न तबसे केवल ज्ञाना। बिना ज्ञानको मुक्ति लहाना॥
स्त्री कोई मुक्ति न पाई। करि सुकर्म स्वर्गनमें जाई॥
स्वर्ग भोगि नरतन पुनि पावै। केवल ज्ञान गहि मुक्त कहावै॥

इति

अथ नर्कको वर्णन--चौपाई

सप्त नरक मत जैन कहाहीं। यम यमगण कतहुँ कोइ नाहीं॥
औध ज्ञान जस देव गहाही। ज्ञानक औध नारकिनमांहीं॥
बुरा औध नारकहि फुराना। पूरब वैरभाव सब जाना॥
पिछला सब औगुन सुधि आवै। एक एकको मारि दुखावै॥
शस्त्रादिक तहँ अगणित जाती। दंड कि हेत बना बहुभांती॥
काटे छेदे तन तिन केरे। कोइ कोइ कोल्हूँमें धरि पेरे॥
एक एकको धरि धरि मारा। मचा चहूँ दिश हाहाकारा॥
जस पारा तस नारक अंगा। कटि फटि होयसो पहिले ढंगा॥

सातो नरक केर ब्यौहारा । भिन्न भेद पीडा अधिकारा ॥
महादुःख नारकहि बनाई । आयू परम दीर्घ जिन पाई ॥
दोहा—सुई अग्र भरि मृत्तिका, नरकसे महि जौं आय ।
ताकी अति दुर्गंधते, सब तरु पशु मरिजाय ॥ इति ॥

अथ प्रलय वर्णन–चौपाई

प्रलयके प्रथम इंद्र महि आवै । जोड़े जोड़े जिव ले जावै ॥
वर्गमें सबकी जतन कराई । जबलौं प्रलय पूर्ण ना पाई ॥
निज विमानमें सब जिव धारी । स्वर्ग दिशा जब इन्द्र सिधारी॥
ताके पीछे परलय आवै । जीव जन्तु सबही विनशावै ॥
अग्निवर्षि पुनि जल बरसाई । जीवबीज नहिं कतहूँ पाई ॥
पूरण प्रलय होय हरिजाई । जीव इंद्र गहिमहि पुनि आई ॥
ताते पुनि जग उतपति होई । एकते बहुरि अनेकन सोई ॥
कबहुँ न होय बीजको नाशा । जक्त अनादि स्वतह परकाशा॥
क्रमहीक्रम फिर बढै विभूती । सर्व पदारथ पृथ्वि प्रसूती ॥

इति प्रलय

अथ स्फुटवार्त्ता–चौपाई

षटप्रकारकी अस्थि जो कहेऊ । वज्रशरीर प्रथम जिव गहेऊ ॥
वज्रको हाड शीघ्र किमि गलई । कहुँ कहुँ भूमें अजौं न टलई ॥
यूरुप नर जहँ तहँ चलि जावै । वज्र हाड जिव जंतुको पावै ॥
सो निज्ञ मन ऐसे अनुपानो । हाड परा चिरने पथरानो ॥
ताको मर्म न जाने सोई । वज्रहाड जिव प्रथम गहोई ॥
भीम शरीर समस्त वज्र रह । दुर्योधन तन अर्ध वज्र कह ॥
लेखा ताहि काल अस रहेऊ । कोइ वज्रकाइ घटि तिहि कहेऊ॥
ताके प्रथम कठिन सर्वंगा । हनूमान आदिक बजरंगा ॥
चिरंजीव जीवे चिरकाला । गहि तन वज्र दोय दुखटाला ॥

इति श्रीजैनधर्म

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतान,
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दयानाम की दया,
वंश ब्यालीसकी दया।

अथ श्रीबोधसागरे

एकोनत्रिंशत्तरंगः

अथ स्वसमवेदबोध प्रारम्भ

★

मंगलाचरण–चौपाई

बन्दों गुरपद नख मणि ज्योती। हृदये बसत दिव्यदृग होती॥
कोटि सूर शशि उर उजियारा। तिमिर अविद्या सकल सँहारा॥
चरणकमल मुनि दलअलिफंदा। धुरपद पाय मधुर मकरंदा॥

पद पराग अनुराग दृढाई । कर बहु अम्मर मणिछबिछाई॥
चरण सलिल सरि मज्जन पाना । युगयुगको कलिकलुषनसाना ॥
महा प्रसाद प्रसादी पाई । कोटिन युगकी छुधा बुझाई ॥
धर्मदास पद प्रथम नमामी । ता पीछे करुणामय स्वामी ॥
वंश बयालिस जगमें जिनको । कोटि प्रनाम हमारा तिनको॥
चार गुरू निज सतगुरु दासा । जिन्हें न प्रभु तजि दूसरि आसा॥
मन क्रम बच गुरु चरनन चेरो । तिनप्रति बहु अभिवंदन मेरो॥
सतगुरु अंशनको बहु बारी । बदि चरनरज निजसिर धारी ॥
जिन जिन सन्त मोहि उपदेशा । धर्मधामको कह्यो सँदेशा ॥
प्रणवों कोटि बार कर जोरी । जिनकी कृपा विमल मति मोरी॥
जो गुरु पद पंकज प्रिय पागे । बन्दौं सबहि सहित अनुरागे ॥
पुनि बन्दों सन्तनके चरना । गुरुस्वरूप कछु भेद न बरना ॥
साहिब सन्त एक जिन जाना । तिनको आवागवन नसाना ॥
नमो बहुरि कवि कुल समुदाई । सत्य कबीर चिन्हि जिन पाई॥
भे अरु अहैं भव्य बहुतेरो । तिन प्रति बिनय दीनता मेरो ॥
उमँगि उमँगि जो गुरुगुन गावै । कोटिन जीव लोक पहुँचावै ॥
जड चेतन जहँ लगिजगजाया । रचना विविधि विरंचि बनाया॥
साधु असाधु सूर अरु कूरा । भोजन विविधि एकरस पूरा ॥
सत्य सुकृत सबमाहिं निहारौं । जोरि जुगुल कर सकल जोहारौं॥
सब मिलि कृपा कीजिये सोई । भणित मोर मङ्गलमय होई ॥
कबि न होउ नहिं चतुर सयाना । काव्य भेद रस भेद न जाना ॥
कथ्यौ कथा सतगुरुकी आसा । बुधजन लखि न करै परिहासा॥
बार बार गुरु पद शिर नाई । धर्म कबीर मर्म अब गाई ॥

इति मंगलाचरन

अथ स्वसमवेद धर्मवर्णन

दोहा–देव कबीर महंत गुरु, स्वसमवेद मत भाष।
सार शब्द टकसार जहँ, सत्यनामकी साष॥
सार शब्द यक मूल है, टीका चौदह क्रोर।
कोटिन ग्रंथको गनि सके, लहे न ताको ओर॥
जे ती जगमें बनपती, अस गंगाको रैन।
अगम अपार अकथ कथा, सत्य कबीरको बैन॥

इति

अथ उत्पत्तिकथा–चौपाई

उतपति प्रलयकि कथा अनंता। बहु विधि सत्य कबीर भनंता॥
उतपति प्रलय कोटिन बारा। स्वसमवेद निर्णय निरधारा॥
कछुक लिखो सो ग्रंथन हेरी। कथा अनूप यथा मति मेरी॥
प्रथमै आदिमें ऐसो कहेऊ। स्वतह स्वछंद जीव यक रहेऊ॥
रह स्वतंत्र आनंद अकेला। नहिं तब गुरू नहीं तब चेला॥
पक्की तत्त्वको ताकी अंगा। अंग पिंड दोनों यक ढंगा॥
माया पुरुषसो जीव उपाना। सत्यस्वरूपी ताको बाना॥
अपनो रूप अनूप निहारी। अहमित भयौ जीव तिहि बारी॥
मोहित भा लखि रूप निकाई। ताहि मोहमें गा गफिलाई॥
आपा भूलि रहा नहिं चेता। महागमन मन भो ता हेता॥
परमानंदमें गयो भुलाई। निजस्वरूपकी सुधि बिसराई॥
तत्त्व प्रकृत्ति पलटि गइ तबहीं। पक्कीसे कच्ची भई जबहीं॥
क्रमही क्रम भै छीन शरीरा। धरिधरि देह पाव बहु पीरा॥
जब कच्चा भा पक्का सांचा। अंड पिंड दोनों भा कांचा॥
निज स्वरूपको ज्ञान न राखा। भई योनि चौरासी लाखा॥
आपे आप रमै जग सारा। भरमै यूनि अनंत अपारा॥

बुद्धिभ्रांति भै जिवकी जबते । काल दयाल प्रकट भै तबते ॥
आप काल है काल उपाया । आपै फँसा आप दुख पाया ॥

वार्ता

प्रथम जीव पक्के रूपमें हता तब दूसरा ना हता । पक्के तत्त्वके नाम–सत्य १, विचार २, शील ३, दया ४, धीरज ५ इन पाँच पक्के तत्त्वका रूप हंसाका था, ताके तीनि गुण पक्के गुण हते। अथ सत्य और बिचारको गुण–विवेक १. अथ शील और दयाका गुण–गुरु भक्ति साधु भाव २. अथ धीरजको गुण-बैराग ३ ये पक्के तीन गुण हते तामें हंसा रहा ।

पचीस प्रकृति वर्णन

१ सत्यकी प्रकृति निर्णय–१ निर्बंध, २ प्रकार, ३ थीर, ४ छमा ५ इति ।

२ विचारकी प्रकृति–अस्ति १ नास्ति पदमें भान २, यथार्थ ३, शुद्धभाव ४, सत्यता ५ इति ।

३ शीलकी प्रकृति–क्षुधा निवारन १, प्रियवचन २, शांति बुद्धि ३, प्रत्यक्ष पारख ४, सब सुख प्रकट ५ इति ।

४ दयाकी प्रकृति–अद्रोह १, मित्रजीव २, सम ३, अभय ४, समदृष्टि ५ इति ।

५ धीरजकी प्रकृति–मिथ्या त्याग १, सत्यग्रहण २, निस्सं-देह ३, इंतानासने ४, अचल ५ इति ।

ये पाँच तत्त्वकी पचीस प्रकृति हैं तामें हंसाको बासा हता तब कच्चा तत्त्व ना हता। पक्के तत्त्वका पक्का देह हता, तब कछु अनुमान ना हता । जब ऐसी अपनी देह देखा और सुंदरता माना तब बहुत आनंद हुआ । ता आनंदमें हंसा मिला तब आप अपनेको भूल गया, गफलत पैदा भई । ता गफलतमें

एक झाँई परी । ता झाँईको सब ब्रह्म सच्चिदानंद कहते हैं, ता आनंदमें जीव बूड़ा तब तत्त्व प्रकृति पलटी। पक्केसे कच्चा रूप हुआ । आपा की खबर न रही। तब पाँच पक्के तत्त्वसे पाँच कच्चे तत्त्व भये। धीरजसे आकाश १, दयासे वायु २, शीतलसे तेज ३, विचारसे जल ४, सत्यसे धरती ५ पक्केसे ये पाँच कच्चे तत्त्व भये ताके तीन गुन कच्चे भये। धरती और जलसे सतोगुण भया १, अग्नि और वायुसे रजोगुण भया २,आकाशसे तमोगुण भया ३, पाँच कच्चे तत्त्वकी पचीस प्रकृति भई ये विकारकी देह भई। ताको नाम स्थूल मनमानता ते मानुष कहिये। तब हंकार हुआ कि मैं करता, तासे इच्छा भई ता इच्छाको नारीरूप भया, तासों भोग किया, फिर वह रूप विनसि गया, नारी गर्भसे तीन रूप पैदा भये. १ जीव, ताते मन २, मनसे ज्योति ३, ज्योतिसे त्रिगुण. रजो गुण ब्रह्मा १, सतो गुण विष्णु २,तमो गुण शिव ३ ये त्रिगुण ऐसे भये। जब पक्केसे कच्चा भया तब सम्पूर्ण सृष्टि चार खानी चौरासी लक्ष योनि पैदा भई. आपही अनेक रूप धरि अनेकयोनिमें भ्रमता है, गफलतसे अपनी भूमिका छोड़ा, जब बहुत दुःख पाया तब अपने मनसे कल्पना किया कि हमारा कर्ता कोई दूसरा है, फिर अनुमानते करता निश्चय किया ता करताके प्रेममें बहुत वेद शास्त्र आदिक बानी बनाया, फिर आप ही उसको खोजने लगा तब कहा कि मालिक निर्गुण निराकार है तब सब वृत्ति थकित भई तब आप ही ब्रह्म कहाय अनुभव करिके संपूर्ण जक्त आपही हो रहा है इस प्रकारसे ब्रह्मसे सृष्टि और सृष्टिसे ब्रह्म रहटमें परा जीवको कहीं निश्चय नहीं दोनों प्रकारसे

कष्ट पावता है जो साधुनकी सेवा करे और बड़े भाग उदय हों तो पारखी गुरु मिलै और पूर्ण पारख बतायके जीवको भर्म छोड़ावे तब आवागमनसे रहित हो पक्का रूप पायके कच्चेका अभाव करे तब आप पारख रूप हो। पारखी आप पारख रूप-ना कहूं धोखा ना भ्रमकूप।

दोहा—एक जीव जो स्वतह पद, बुद्धि भ्रांतिसे काल।
काल होय बहु काल सो, रचनते भयो बिहाल॥
बेहालीको मतो जो, देव सकल बतलाय।
ताते परख प्रमान लहि, जीव नष्ट नहिं जाय॥
करि अनुमान जो सुन्न भो, सूझै कतहूँ नाहिं।
आप आप बिसरो जबै, विज्ञान देहि कह ताहिं॥
ज्ञान भयौ जाग्यो जबै, करि आपन अनुमान।
प्रतिबिंब झाँई लखे, साक्षी रूप बखान॥
साक्षी है परकाश मो, महाकारन तिहि नाम।
बिंब मसूर प्रमान भो, नील बरन घनश्याम॥
बाढि बिंब अर्ध पर्व भो, सुन्नाकार स्वरूप।
ताको कारन कहत है, महा अँधियारी कूप॥
कारणते आकार भो, श्वेत अंगुष्ठ प्रमान।
वेद शास्त्र सब कहत तिहि, सूक्षमरूप बखान॥
सूक्ष्म रूपसे कर्म भो, कर्महिसे अस्थूल।
परा जीव यहि रहटमें, सहै घनेरी शूल॥
स्थूलते पुनि सूक्षम, सूक्ष्मते कारण होय।
महाकारण तुरिया करी, ज्ञान देहि कह सोय॥
सर्वसाक्षि सो ज्ञान है, रहित भयो विज्ञान।
संतो सबै अनर्थ पद, यामें नहिं कल्यान॥

षट देही वर्णन करों, समझिके त्यागो मित्त ।
एक एक अब कहत हौं,जिहि प्रकार जिहि मित्त ॥

इति

अथ स्थूल देही वर्णन–वार्ता

स्थूल देही साढ़े तीन हाथ रक्तबरण ब्रह्मा देवता रजो गुण ॐकार मात्राका जाग्रत अवस्था बैखरी बाचा त्रिकुटी अस्थान जल तत्त्व खेचरी मुद्रा पपील मार्ग घटाकाश नेत्रस्थान सत्य-लोक विश्व अभिमानी गायत्री प्रथम पद क्षर निर्णय बड़वाअग्नी विषयानन्दादिक आपतत्त्व दश इन्द्री रहस मात्रका अर्ध सत्र ऋग्वेद चौदह देवता पचीस प्रकृति । इति ।

पचीस प्रकृति वर्णन

(१) आकाशकी प्रकृति–काम १, क्रोध २, लोभ ३, मोह ४, भय ५, रंग काला अहार शब्दद्वारा कान इति । (२) वायुकी प्रकृति–चलना १, बोलना २, बल करना ३, पसारना ४, संकोचना ५. रंग हरा अहार गंध द्वारा नासिका इति । (३) अग्निकी प्रकृति–नींद १, जमुहाई २, भूख ३, प्यास ४, आलस ५. रंग लाल अहार देखनो द्वारा आंख । (४) जलकी प्रकृति–रक्त १, पसीना २, थूक ३, मूत ४, बिंद ५. रंग श्वेत अहार मैथुन द्वारा लिंग इति । (५) पृथ्वी प्रकृति–हाड १, मांस २, नाडी ३, चाम ४, रोम ५. रंग पीला द्वारा गुदा इति पचीस प्रकृति ।

चौदह देवताके नाम

मनके देवता चन्द्रमा १, बुद्धिके देवता ब्रह्मा २, चित्तके देवता नारायण ३, अहंकारके देवता शंकर ४, नेत्रके देवता सूर्य्य ५, कानके देवता दिशा ६, वाचाके देवता अग्नि ७, त्व-

चाके देवता वायु ८, नाकके देवता अश्विनीकुमार ९, जीभके देवता वरुण १०, हाथके देवता इंद्र ११, पाँवके देवता उपेन्द्र १२, लिंगके देवता प्रजापति १३, गुदाके देवता यम १४। मुक्ति सालोक इति स्थूलदेही विस्तार।

अथ सूक्ष्म देहीका वर्णन

लिंगदेही अंगुष्ठ बराबर ओंकार मात्रका श्वेत वर्ण विष्णु देवता स्वप्न अवस्था श्रीहटस्थान मध्यमा बाचा उर्ध सैन्य दीर्घ-मात्रका यजुर्वेद वैकुण्ठलोक कण्ठस्थान पालनक्रिया आप तत्त्व भूचरी मुद्रा विहंगमार्ग दुतिया पद गायत्री अक्षर निर्णय मन्दा किनी कोहं अहंकार सामीप्य मुक्ति पंचभूत सूक्ष्म प्राण अपान समान उदान व्यान चतुष्टय अन्तःकरण मन बुद्धि चित्त अहं-कार शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये सूक्ष्म नौ तत्त्व कहिये, पंच ज्ञान इन्द्री पंच कर्म इन्द्री ये सब जड हैं; जीव प्रतापतै चैतन्य होते हैं तासे जीव कहते हैं इति लिंग।

अथ कारण देहीका वर्णन-वार्ता

कारण देही अर्ध पर्ब्ब श्याम बरण मकार मात्राका गोलहट स्थान वैसन्ती बाचा मध्य शून्य तमो गुण सामवेद चाचरी मुद्रा कपिमार्ग महदाकाश हृदयस्थान पराग्य अभिमान कंठ स्थान निर्णय उदायाग्नि तृतीया पद गायत्री अद्वैतानन्द नवीन इच्छा शक्ति सुषुप्ति अवस्था सारूपमुक्ति इति कारण देही।

अथ महाकारण देहीका वर्णन

महा कारण देही मसूर बराबर विकार मात्रका नील वरण ईश्वर देवता हुंठ पीठ स्थान पराबाचा शून्य अर्धमात्रका अथ-र्वण वेद वायुतत्त्व अगोचरी मुद्रा। ज्वाला कालामीनमार्ग चिदा-काश आत्मलोक नाभी स्थान प्रतिज्ञा विष्णु अभिमानी

चतुर्थ पद गायत्री आदि शक्ति विदेही नंद सोहं ओहं अहंकार तुरीया अवस्था प्रकाशिक सायुज्य मुक्ति इति ।

अथ ज्ञानदेहीका वर्णन वार्ता

इन चारोंको साक्षी ज्ञान देही स्वसमवेद उन मुनि बाचा स्थान भौंर गुफा सदाशिव पूर्ण गिरी अनुचरीय मात्रका पूर्ण बोध अवस्था कालातीत शिष्यमार्ग निराकाश शिष्यस्थान निराश्रयलोक निरंजन अभिमानी पंचम परमारथ पद गायत्री ज्ञाननिर्णय ब्रह्मज्ञान मन ब्रह्मानंद अहंकार ज्ञानदेही ज्योतिस्वरूप कहते हैं मुक्ति में ब्रह्ममय सर्वसाक्षी, इति ज्ञानदेही ।

अथ विज्ञानदेहीका वर्णन-वार्ता

विज्ञानदेही आकाशवत् रूप रेख रहित नहीं आवै नहीं जाय नहीं उपजे नहीं विनशै नहीं भीतर नहीं बाहर ऐसा है कैसा नहीं अहंकार रहित मान अपमान रहित रूप अरूप रहित अहम् (मैं) त्वम् (तू) रहित वचन और निर बाच रहित इच्छा अनइच्छा रहित नाहं कर्ता नाहं भुक्ता जैसाको तैसा विज्ञान देही ना कोई जीव ना कोई मन ना कोई माया ऐसा भास विज्ञान देहीमें रहता है इति विज्ञानदेही ।

चौपाई

इसके आगे भेद हमारा । जानैगा कोइ जाननहारा ॥
कहैं कबीर जानैगा सोई । जापर दया गुरूकी होई ॥

सोरठा-यहि विधिसे यह जीव, गिरा आपने रूपसे ।
भोगे दुःख सदीव, जबलौं लहे न भूमिका ॥

चौपाई

यहि विधिजिव निजरूप बिसारे । तजि सो भूमि देह गहन्यारे ॥
तजि निजरूप और जब भासा । कछुक द्यौस तामें कर बासा ॥

सो तन त्यागि और पुनि लैऊ । पुनि कछु काल ताहिमें रहेऊ ॥
पुनि त्याग्यौ पुनि गह्यौ नवीना । क्रम क्रम भयौ ज्ञान गुनछीना ॥
षट प्रकार गह उत्तम अंगा । पुनि पशु पक्षी कीट पतंगा ॥
नर तनमें ज्यौं पारख पावै । तौ यह जीव बहुरि घर आवै ॥
मनुज देह ज्यौं चेतन होई । तौ निश्चय जिव जाय बिगोई ॥
धोखे परा जीव यहि लेखा । भांति भांतिको धारे भेषा ॥
भ्रम करि वेद कितेब बनाया । भ्रम करि द्वैताद्वैत बताया ॥
भ्रम करि कर्म धर्म ठहराया । भ्रम करि बड़ बानी कथि गाया ॥
भर्मको धर्म सकल जग माहीं । सब जिव बले भर्मकी छाहीं ॥
भ्रम करिके षट दर्शन थापा । भ्रम करिके जिव लखै न आपा ॥
भ्रम करि ईश्वर दूर बताया । बिरही बने सकल जग जाया ॥
भ्रम करि इत उत ढूँढ़न लागे । भ्रम करि प्रेम भक्तिमें पागे ॥
धोखे परा सकल संसारा । विन सतगुरु भ्रम टरे न टारा ॥
सारशब्द सतगुरुको पावै । सब धोखा भ्रम दूरि बहावै ॥

दोहा—ब्रह्मादिक सनकादिक, भ्रम करि बानी गाय ।
ता बानी भ्रम विष चढ़ा, जीव गये गफिलाय ॥
तिहि कारन आसा लगी, आवा गौनको मूल ।
पल्लो ताते सात फुटि, जीव सहै बहु शूल ॥

इति

अथ सात बीज वर्णन

ॐ श्रीं रं सौं रौं ह्रीं क्लीं. अ इ उ ए व म ह ।

चौपाई

सात बीज यह कह्यौ बखानी । ताते पुनि अंकुर उतपानी ॥
क्रम ऊपाछा योग रु ज्ञानी । उतपति स्थितिप्रलय विधिनाना ॥
सातो अंकूरे जब चाली । चित्तरूप तब गहौ कुदाली ॥

गोडन लगे नित्त प्रति वाही । बुद्धिके जलते सींचा ताही ॥
आलबाल हंकार बनाया । मन रूपी तहँ खाद डराया ॥
अंतःकरण भूमिका माही । नित नौ पल्लव फूटै ताही ॥
नाना कर्म उपाल्ला नाना । नाना योग अरु नाना ज्ञाना ॥
नाना उतपति स्थित है नाना । प्रलय अनंत न जाय बखाना ॥
एक एक प्रति नाना बानी । नाममात्र कहि तासु बखानी ॥
सात बीज गुरुवन मिलि बोये । प्रथम सुभेच्छा नाम कहाये ॥
पुनि सुविचार दूसरे कहिये । तनोमानसा तृतिये गहिये ॥
सत्त्वापति चौथे कहि दीजै । असंशक्ति पंचम गनि लीजै ॥
छठे पदार्थ अभावनी भाषा । तुरिया नाम सप्तमे राखा ॥
बोये सात बीज जब येही । अंकूरे निकसे फुटि तेही ॥
प्रथमै सो अब करों बखाना । जाते ज्ञानकेर बंधाना ॥
सोहं बीजको अंकुर ज्ञाना । आलबाल भक्तिमय साना ॥
सींचा ताहि प्रेमकी बारी । ताने नित नौ पल्लव धारी ॥

दोहा-शुभ इच्छादिक सात ये, तिनप्रति बानी भूर ।
पल्लव तिनते बहु फुटी, रही जक्त भर पूर ॥
ज्ञान परोक्ष है फूल तिहि,फल अपरोक्ष जो ज्ञान।
दो बिधि ज्ञान प्रमानमें, जक्त जीव अरुज्ञान ॥

चौपाई

दुतिये अकार कर्म कहि गावो । ताते कर्म अंकूर उगावो ॥
भय करि आलबाल कर ताही । लोभके जलते सींचा वाही ॥
तामें सात साष कर थापन । यजन याजन अध्यन अध्यापन ॥
दान प्रतिग्रह मैथुन गानी । सातो कर्मकी नाना वानी ॥
बानीते पल्लव बहुतेरो । फूल बासना ताको हेरो ॥
पुण्य पाप द्वै फूल सो आना । कर्म करै यह कीन बखाना ॥

पुनि तृतिये अब देहुँ बताई । श्री उपाङ्गा बीज कहाई ॥
तिहि उपाङ्गा अंकुर आया । आलबाल मरजाद बनाया ॥
भावके जलते सींचा ताहीं । सात साख फूटी तिहि माहीं ॥
शिव विष्णू गणपति रवि होई । शक्ती राम कृष्ण सातोई ॥
पल्लव ताहि न फूटी थोरी । महामंत्र जो सात करोरी ॥

दोहा—जारन मारन बसकरन, उच्चाटन, उच्चार ।
आकर्षण अस्थंभनो, मोहन सप्त विचार ॥
तिनमें लागे फल रुचिर, लोकादिक बहु फूल ।
आब चौथो वर्णन करौं, योग धर्मको मूल ॥

चौपाई

योग बीज रंकी न प्रमाना । ताते योग अंकुर बिकसाना ॥
किरिया आलबाल कर ताको । साधन जलते सींचा वाको ॥
शास्त्र पतञ्जल पल्लव गायौ । सात साख तामें फहि आयौ ॥
प्रथमैं सो हठयोग बतावो । बहुरि योग लय नाम कहावो ॥
योग कुंडली तीजे बरना । पुनि लंबिका योग चित धरना ॥
पंचम तारक योग बताई । षष्ठ योग अमनसकहि गाई ॥
योग सांख्य सप्तम गुणगाहा । फूल समाध बखानो ताहा ॥
अणिमादिक सिद्धी फल अहई । अब उतपत्य भेद विधि कहई ॥
ए उतपत्य बीज बतलाया । तामें उतपति अंकुर आया ॥
विषया आलबाल कर जाही । बानी जलते सींचा वाही ॥
उतपति साख सात प्रकटानी । जाते चारो खानि बखानी ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गंधा । बहुरि बासना इच्छा बंधा ॥
शब्दते मेघ कीट बहु आही । दादुर आदिक उत्पति जाही ॥
बहुरि स्पर्श अरु मैथुन गाया । जीव मैथुनी ताते जाया ॥
तृतिये रूप कि उत्पति ठाना । अनल विहंग आदि जिव नाना ॥

जेते दृष्टि भावते जाये। सो सब रूप उतपन्न कहाये॥
चौथे रसते जलचर भयऊ। वृक्षके फलते कीड़े कहेऊ॥
पंचम गंधते उखमज होई। छठे वासना उतपति जोई॥
ताते देव योनि प्रकटानी। भूतादिक ताहीते मानी॥
सप्तम इच्छाते सिध योनी। सात बीज यह उतपति थूनी॥

दोहा—नारी ताको फूल है, पूरुष फल बतलाय।
बहुरि स्थितके बीजको, वर्णन करौं सभाय॥

चौपाई

ह्रीं स्थिती बीज षष्ठोई। आलबाल तिहि माया होई॥
मोहके जलते सींचा येही। सात शाख फुटि निकसीतेही॥
अन्न अरु जल तृण पृथ्वी पत्ता। फल अरु फूल स्थिती गहत्ता॥
अन्नते नर जलते है जलचर। तृणते तृणचर पात पत्रचर॥
पुष्पते स्थित पुष्पचर आही। फलचर सदा फलनको खाही॥
महि अरु मैलते जो उपजाया। महिअरु मैलसों भोग लगाया॥
अब सप्तम परलयको बरनो। क्लीं है बीज ताहि संहरनो॥
परलयको अंकुर सों धारा। सात साख तामें परचारा॥
आलबालकी ना कठिनाई। क्रोध बाग्ति सो तृप्ताई॥
सात लाख हैं ताके तीरा। पृथ्वी पानी अग्नि समीरा॥
लात हाथ अरु दंत भनन्ता। नास करनको शस्त्र अनन्ता॥
भय है फूल मृत्यु फल जाका। सत्य कबीर बचन परपाका॥

इति

अथ उत्पत्ति कथाग्रंथ अमर मूल सत्य कबीर वचन—चौपाई

आदि पुरुष जब हतो अकेला। शब्द स्वरूपी पंथ दुहेला॥
मनसा घटते भिन्न निकारी। उत्पति भई ताहि यक नारी॥
वह नारी सकलो जग जाया। भग भोगे सो पुरुष कहाया॥

भग द्वारे ह्वै बालक आया । यही भांति सब जग भरमाया ॥
यहि घटमें द्वै रूप सवारी । सूरज पुरुष चंद है नारी ॥
प्रथम हतो जब सुन्न सुभाऊ । काल सुन्न एकै समुझाऊ ॥
काल भेद कोई नहिं जाना । धर्मदास तुम सुनियौ ज्ञाना ॥
सुन्नहि माहँ शब्द उच्चारा । धर्मरायको भयौ पसारा ॥
प्रथमहि जिंदरूप यक भैऊ । सत्तर युग सोवत चलि गैऊ ॥
सत्य साहिब मोहि आज्ञादीन्हा । जिंद जीव कह तुम नहिं चीन्हा ॥
तब हम जाय शब्द अस बोला । सोवत जिंद नाहिं चितडोला ॥
तब हम जाय जगावन लागे । जिंद न जाग प्रेम अनुरागे ॥
नाहिन जाग नींद भ्रम आवा । तब हम शब्द एक उपजावा ॥
काल शब्द कहि टेरि पुकारा । सुनिके जिन्द भयो संभारा ॥
काल शब्द सुनि जिंद डेराना । तब गहि आनि चरण लपटाना ॥
काल शब्द ना होता भाई । तो काहेका भक्ति कराई ॥
कालकी डर तपसी तप साधा । इंद्री पञ्च काल डर बाँधा ॥

इति

अथ उत्पत्ति कथाग्रन्थ कबीर बाती और अनुरागसागरके
अनुसार सत्यकबीर वचन--चौपाई

प्रथमै आदि समर्थते सोई । दूसर अंश हतो नहिं कोई ॥
आदि अंकुरा सुरति जो कीना । सत्य करी गर्भै तब लीना ॥
पांच अंड तब भयौ उपानी । तत्त्व एक है भिन्न प्रमानी ॥
धावै अंड करै चौचन्दा । आप देखके सहजानन्दा ॥
फूटे अंड तेज भइ धारा । सबमें देख पांच ततसारा ॥
देखि रूप अंडनको भाई । सोहं सुरति तबै उपजाई ॥
पुरुष शक्तिमें दोय प्रकारा । ताको सौंपा उतपतिसारा ॥
तासों उत्पति भेद बतावो । बचन सुरति एकै संमावो ॥

जाते ओहं पुरुष भे अंशा। ओहं सोहं भे द्वै अंशा॥
ताको आज्ञा उत्पति कीना। शब्द संधि उनहूको दीना॥
मूल सुरति अरु पुरुष पुराना। रचना बाहर कीनो थाना॥
ओहं सोहं अंडन रहेऊ। सकल सृष्टि के करता भयऊ॥
प्रथम अँकु दुज इच्छा संगा। तीसर मूल चौथ सोहंगा॥
ओहं सोहं कीन प्रमानी। आठ अंश भे तिनते उतपानी॥
आठ अंश भे एक निधाना। करता सृष्टि भये परमाना॥
सात अंशके नाम बखानो। जिनते सकल सृष्टि बंधानो॥
प्रथम मूल अंकूर गनीजै। इच्छा सहज साहंग भनीजै॥
पुनि अचिंत फिर अक्षर भैऊ। बृद्धि हेत करता निरमैऊ॥
सातो अंश जीव हितकारी। जिव कल्यान काज तन धारी॥
यहिविधि रचना करि करतारा। पुनि अपने मनमाहिं विचारा॥
बिना काल नहिं जीव डेराई। कोइ न भक्ति भजन मन लाई॥
तिहि औसर प्रभु काल उपाया। जाकी डर सब जीव डेराया॥
जप तपादि संयम जो करनी। काले के डरतें सो सब बरनी॥
सात अंश जिव दाया करता। अष्टम काल भयो संहरता॥

सोरठा—बृद्धि हेत भे सात, अष्टम नास्तिकि हेत है।
स्वसमवेद विख्यात, तिनते सब रचना भई॥

चौपाई

द्वीपन द्वीप अंश बैठारा। सातो जहँ तहँ कीन पसारा॥
अक्षर कीन जहाँ निज थाना। तहँ समूहजल तत्त्व बखाना॥
अक्षर सुरति पुरुषकी बानी। त्रिगुण तत्त्व घटमाहिं समानी॥
तब अक्षर को निद्रा आई। सोरह चौकरी सोय सिराई॥
अक्षर सुरति मोहमें आई। ताते दूसरे अंश उपाई॥
अंडस्वरूपी जलमहँ दीना। यह अबिगति समरथने कीना॥

अक्षर जागा निद्रा जाई । देखि अंड व्याकुलता आई ॥
चकृत भा यह किन निरमाई । अंडदृष्टिने देखो भाई ॥
चहुँदिशि तहाँ रहे जल छाये । अंडा तापर तरे भाये ॥
अक्षर ढिग अंडा लगि आवा । तामें लिखी हकीकत पावा ॥
ऐसी तामे लिखी निशानी । परमपुरुषकी सो सहिदानी ॥
तुम लगि हम यक अंश पठाई । रचना करो सृष्टिकी भाई ॥
तुमते सो करिहै बरिआई । आवन देहु जहाँ लगि आई ॥
सत्रहसौ युग ऊपर तीसा । तासु महातम कर जगदीशा ॥
बहुरि महातम होय तुमारा । कालजालते जीव उबारा ॥
काल पुरुष तब पुरुष समाई । तासु महातम तब उठि जाई ॥
तब सब जीव मुक्ति पद पैहैं । फेरि न चौरासीमें ऐहैं ॥
ऐसो अंडप लिखा निहारी । अक्षर पढि मनमाहिं विचारी ॥
अक्षर दृष्टि अंड बिहराना । ताते काल बली प्रकटाना ॥
सोइ ज्योति निरंजन भयऊ । जाको सब जग करता कहेऊ ॥
अक्षर सुरति पुरुषकी बानी । ताते काल भयो अभिमानी ॥
निरंजननाम अक्षरने भाषा । समरथ शब्द हृदयमें राखा ॥
प्रभु निज तेजते काल उपाया । ताते सकल सृष्टि दुख पाया ॥
यकपग काल रह्यो पुनि ठाढो । युग सत्तर कीनो तप गाढो ॥
तपमें येते काह बिताई । मांगु मांगु वर कह तब साँई ॥
कहै काल प्रभु यह वर दीजे । तिहूँ लोकको राज करीजे ॥
भवसागरमें राज हमारा । सुनि समर्थ अस वचन उचारा ॥
पुत्र जाहु पृथ्वीके मूला । जहाँ कूर्म बैठे अस्थूला ॥
सृष्टि भंडार कूर्मको भाई । सोलह माथ चौंसठहाथ पाई ॥
ताते लेहु सृष्टिकी रचना । शीश नाय बोलेहु मृदुवचना ॥
तीन लोकको पायो राजू । धर्मराय तब निज उर गाजू ॥

चाले धर्म हर्ष हिय बाढ़े । मनमें करत गुनावन गाढ़े ॥
जाय कूर्मके सम्मुख भयऊ । नहीं प्रनाम दंडवत कियऊ ॥
देखे धर्म कूर्मकी काया । अठानबे कोटि योजन बतलाया
बारह पालंग कूर्म शरीरा । षट पालंग धर्म बलबीरा ॥
धर्मराय तब कूर्मते कहई । मोहि पुरुषकी आज्ञा अहई ॥
सृष्टिकी रचना मोकहँ देहो । ना देहो तो मारिके लेहो ॥
तबहि कूर्म निज मनहि विचारी । यह तो काल भयो हंकारी ।
कहैं कूर्म सुनिये धर्मराया । पुरुष मोहि नहिं कछु फरमाया ॥
हमते मांगे कछु नहिं पावो । जाय पुरुष ढिग बेगि सिधावो ॥
यह सुनि धर्मराय अतिकोपा । कूर्मते युद्ध करण प्रण रोपा ॥
तपबल काल भयो बरियारा । अहंकार करि कूर्म प्रचारा ॥
भिरा जायके सन्मुख धाई । करे यतन किमि रचना पाई ॥
धायकाल अतिबल तिहि डाटा । तासु तीन शिर नखते काटा ॥
शीस तासु जिहि औसर खंडा । उद्रते निकसा पौन प्रचंडा ॥
रणश्रव कूर्म तन उठा पसीना । सो जलतत्त्व पृथ्वीतिहिकीना ॥
पाँचतत्त्व धरती असमाना । सूरज चंद्र नखते प्रकटाना ॥
तनत पौन छूटा जिहि बारा । रचना सकल कीन विस्तारा ॥
जबहिं प्रसेव बुन्द जल दीना । महि उनचास कोटि तिहि कीना ॥
दूधपै जैसे परे मलाई । जलपर तथा जमीन जमाई ॥
कूर्मको तिहुँ सिर भक्षण कियऊ । बहुरि निरंजन शून्यमें गयऊ ॥
धर्मराय तब कीन विचारा । कहँ लगि तीनो लोक पसारा ॥
स्वर्ग मृत्यु कीनो पाताला । बिना बीज किमि कीजै बाला ॥
करि सेवा मांगो वर सोई । जाते तिहुँ पुर मेरो होई ॥
पूर्वध्यान तब कीन निरंजन । युग चौंसठ कर सेवासंजम ॥
एकपाँव पुनि सेवा कियऊ । चौंसठ युगलों ठाढे रहेऊ ॥

बहुरि पुरुष दीनो बरदाना । सोइ होई जो तोहि मनमाना ॥
बहुरि निरंजन विनय उचारा । बीज खेत दीजै करतारा ॥
देहु ठौर बैठा जहँ जाई । तबहि पुरुष अस बचन सुनाई॥
मान सरोवर बैठक लीजै । तीन लोककी रचना कीजै ॥
तब करता मन कीन विचारा । बीज खेत तिहि काल सँवारा ॥

अथ बीजखेत अथवा आदि शक्तिकी

उत्पत्ति वर्णन–चौपाई

अद्याकी उतपत्ति बखानों । ग्रंथ श्वास गुंजार प्रमानों ॥
निजतन मथि प्रभु मैल निकारी । रची ताहि आदि कुमारी ॥
पुरुष मैलते साँचा कीना । पैठी मैल रंग तिहि दीना ॥
देकर रंग बरन सब फेरा । भीतर मल मोह मद घेरा ॥
पुरुष मैलते पुत्री कीनी । पाँच तत्त्व तिहि भीतर दीनी ॥
उतपति पारस पुत्री पावा । प्रगटी कला अनंत सुभावा ॥
नख शिष देह सिद्ध प्रभु कीना । पंचइ श्वास तिहि भीतर दीना॥
जब श्वासा कायामें गैऊ । प्रगटी ज्योति जगामग भैऊ ॥
आठो अंग बना बहु रंगा । पारससार ताहिके संगा ॥
निर्मल उदित बतीसो दंता । चमकै बिजुली कला अनंता ॥
उपजी ज्योति अखंडित बानी । बोले बचन पुहुप रससानी ॥
मधुर वचन अरु लीला धारी । देख रूप जब पुरुष दुलारी ॥
उपजी रंग रूपकी खानी । बोले अमी बिरहकी बानी ॥
उपजी कन्या कला अनूपा । पुरुषते प्रकट पुरुष स्वरूपा ॥
जिह्विया रस सब उतपति कीना । सोंपा रस कन्याको दीना ॥
उपजी कन्या अगम सुभावा । अष्टंगी कह पुरुष बुलावा ॥
पुत्री जाहु निरंजन पाही । तुमकहँ समरथ सदा सहाई ॥

अथ आद्या और निरञ्जनकी कथा वर्णन–चौपाई

परम पुरुषकी आज्ञा पाई । कन्या तबहि कैल ढिग आई ॥
यकपग खड़ी सेवमें लागो । छुटी समाधि निरञ्जन जागो ॥
सम्मुख पलक उघारि निहारी । देखा ठाढ़ी आदि कुमारी ॥
परमरूप शोभा सरसाई । देखतके लहि काम सताई ॥
कहैं कैल सुनु आदि भवानी । मिलि हम तुम जग रचना ठानी ॥
तब आद्या अस उत्तर दीना । यह विचार तुम अनुचित कीना ॥
मैं हौं बहिन तू मेरो भाई । मोहि तोहि ना होय सगाई ॥
यहि करनी तोहि लागै पापा । धर्मराय तब निज पद थापा ॥
पुण्य पापके भय मोहि नाहीं । पुण्य पाप हमही तै आहीं ॥
पुण्य पापके हम करतारा । कोई लेय न लेख हमारा ॥
कहैं कैल सुन आदि कुमारी । मोहि कारन तोहि पुरुष सँवारी ॥
मानि लेहु तुम हमरा बचना । मिलि हम तुम करिये जगरचना ॥
कैल वचन आद्या नाहिं माना । उत्तर प्रति उत्तर तोहि ठाना ॥
तब मन रोष निरञ्जन कीना । निज मुखमाहि मेलि लिहि दीना ॥
लीलत कन्या कीन पुकारा । पुरुष पुरुष कहि वचन उचारा ॥
ततक्षन योग जीत प्रकटाने । गहे कमान बान कर ताने ॥
सुरति बानते कैलहि पारा । कन्या मुखते बाहर डारा ॥
जब कन्या मुख बाहर आई । योगजोत तब गयो लोपाई ॥
कन्या भयबश भै तिहि काला । पुरुषकि सुधि बिसरायो बाला ॥
पिता पिता कहि कैलहि बोले । मदन प्रचंड तासु तन डोले ॥
कियो निरञ्जन सकल पसारा । पुण्य पाप दोउ रचे अपारा ॥
पुण्य पाप दोउ फंदा होई । जामें अरुझि रहे सब कोई ॥
योग यज्ञ संयम व्रत पूजा । सब हमही कोइ और न दूजा ॥
रची छुधा माया बिकरारा । पुरुष लोकको मूँद्यौ द्वारा ॥

कहै निरञ्जन कामिनि पाही । पूरुष ढिग अब हम नहिं जाई॥
पूरुष लोक इहाँ रचि लीजे । यकछत राज हमहि तुम कीजे॥
अब तौ पुरुष आस नहिं मोही । गहिके बाह राखि हो तोही ॥

छन्द-भग ना हतो तिहि नारिके नख फारि कीन निरञ्जना ।
यमसाट जिव जेहि बाट त्रिचरे घाट उत्पतिको बना ॥
भग भोग प्रथम सँयोग सोई कैल आद्या सों ठना ।
भे प्रकट ब्रह्मा विष्णु शंकर त्रिगुन भव निधि रंजना॥

अथ त्रिदेवकी जन्मकथा वर्णन-चौपाई

काल कछुक जब गयौ सिराई । रूपरंग कन्या तन छाई ॥
जब भलि भांति रंग तन भीना । कन्या कैल ब्याह सँग कीना ॥
कूर्मको तीन शीस जो रहेऊ । कैल काटिके भक्षन कियऊ ॥
ताते तीन अंश प्रकटाने । ब्रह्मा विष्णु महेश बखाने ॥
देव निरंजन आदि कुमारी । केते काल कीनो सुख भारी ॥
कैल अरु कामिनि भोग बिलासा । स्वसमबेद भलिभांति प्रकाशा॥
तीनो सुत जिहिं काल उपाई । धर्मराय तब गयौ लुपाई ॥
राजपाट आद्याको दीना । सुन्नमाहँ निज बासा कीना ॥
कह्यो निरंजन आद्या पासा । मेरो भेद न करहु प्रकाशा ॥
पुत्रनसे जनि बात जनावो । मेरो भेद न तिनहि सुनावो ॥
यतन अनेक ध्यान जौं लैहैं । तो मम दर्श पुत्र नहिं पैहैं ॥
यह कहि शून्यमें गयो समाई । योगसमाधि निरञ्जन लाई ॥
मातासे सुत पूछै बाता । पिता हमार कहाँ है माता ॥
पुत्रनते कह आदि भवानी । पिता तुमार हमहुँ नहिं जानी॥
रचना सकल हमहिते होई । हम तुम तुम हम और न कोई॥
तुमहो पुरुष हमहि तोर जोई । हम तुम दूसर और न कोई ॥
हम हैं पिता हम ही हैं माता । हम ही तीन लोकके दाता ॥

जब जननी अस बचन उचारा। सुनि संसै कर तिहूँ कुमारा ॥
माता कपट कीन हमपाहीं। पिताको भेद बतावत नाहीं ॥
तीनो बालक ताते रूठै। जननी बचन कहैं सब झूठै ॥
तब माता बोली रिसिआई। पिताको दरश करहु तुम जाई ॥
माता कह तुम पुष्प चढ़ाओ। पिताको शीस परसिके आवो ॥
चले जो पुत्र पिताकी आसा। पिता रहे पुत्रनके पासा ॥
खोजत खोजत कतहुँ न पाई। रहे निरंजन सुन्न समाई ॥
लगी समाधि निरंजन तारी। निकसे वेद श्वास सँग चारी ॥
ऋग अरु यजुर अथरबन सामा। धरि तन रटहि निरंजननामा ॥
निरंकारकी अस्तुति करहीं। देव निरंजन गुन उच्चरहीं ॥
देव निरंजन दृष्टि न आवै। ज्योतिज्योति कहि श्रुतिगुणगावै
तिहिमें वेद निरखै निज नैना। अनुमानहिते भाखे बैना ॥
वेदन प्रति नभ बचन सुनाई। बासा करहु सिंधुमें जाई ॥
आज्ञा दियौ निरंजन राई। बसो वेद सागरमें आई ॥
बहुरि निरंजन सैन लखाई। आद्यासे अस कहो बुझाई ॥
निज पुत्रनको आज्ञा दीजै। सिंधु मथनको उद्यम कीजै ॥
तब आद्या अस युक्ति बनाई। तीन सुता निज अंग उपाई ॥
पुत्रिन कह अस आज्ञा दीनों। बसहु जाय सागरमें तीनों ॥
माताको अस आयसु पाई। तीनों सिंधुमें गई समाई ॥
यह चरित्र जननी जो ठाना। ब्रह्मा विष्णु शंभु नहिं जाना ॥
राखा गुप्त न मर्म बताया। आद्या सुतनसे वचन सुनाया ॥
सागर मथन जाहु मम बारा। पैहो वस्तु महा सुखसारा ॥
माताकी जब आज्ञा पाई। चले तिहू तिहि शीस नवाई ॥
मथ्यौ जाय सागरको सोई। कन्या तीन प्रकट तब होई ॥
तीनो कन्या जबही पाये। हर्षसमेत मातु ढिग आये ॥

तब माता पुत्रन कहि टेरा। यह तो काज भयौ सुत तेरा॥
सावित्री ब्रह्माको दीना। विष्णू लक्ष्मीको बरि लीना॥
पारवती शंकरको ब्याहा। नारि पाय अतिमनहि उछाहा॥
काम विबशभे तीनों भाई। देव दनुज सब ही प्रकटाई॥
जननी पुनि पुत्रन समुझावो। सागर मथन फेरि तुम जावो॥
जो जिहि मिले लेहु तुम सोई। तीनों पुत्र चलत तब होई॥

सोरठा—रञ्च न लायौ बार, चले तिहूँ सुत सिंधुतट।
मथ्यौ ताहि चित धार, निकसे चौदह रतन तब॥

चौपाई

चौदह रत्न निकस जिहि बारी। लै जननीके सम्मुख धारी॥
माताके जब आगे कीना। ताने बाँटि तिहूँको दीना॥
पायौ वेद सो ब्रह्मा लीनो। पढ़ि गुनिके विचार सो कीनो॥
ब्रह्मा वेद पढ़न जब लागा। पढ़त वेद तब भौ अनुरागा॥
कहै वेद पूरुष यक आही। निराकार जिहि रूप न छाही॥
सत्य माहँ सो रूप देखावत। चितवत दृष्टि नजर नहिं आवत॥
स्वर्ग सीस पग आहि पताला। यह सब देखो ताको ख्याला॥
ब्रह्मा विष्णुसे कह समुझाई। तुमहू शंभु सुनो चितलाई॥
आदि पुरुष यक वेद बतावा। वेद कहै हम भेद न पावा॥
तब ब्रह्मा माता ढिग आये। करि प्रनाम तेहि शीस नवाये॥
हे माता मोहि वेद बतावा। सिरजनहार और बतलावा॥

दोहा—ब्रह्मासे माता कहै, सुन सुत मेरी बात।
सप्त स्वर्ग है शीस जिहि, चरण पताल है तात॥
जौं इच्छा तोहि दरशकी, पुष्प लेहु तुम हाथ।
वेगि सिधारो ताहि ढिग, जाय नवावो माथ॥

चौपाई

ब्रह्मा मातहि शीस नवाई। उत्तर दिशा वेगि चलि जाई॥

तिहि अस्थान पहूँचे जाई । नहिं तिहँ रवि शशि सुन्न रहाई॥
बहुविधि अस्तुति करे बनाई । ज्योति प्रभाव ध्यान तहँ लाई॥
करते ध्यान गये युग चारी । माता शोच पुत्रकर भारी ॥
ब्रह्मा तात दरश नहिं पावा । शून्य ध्यान युग चारि गँवावा ॥
किहि विधि रचना रची बनाई । ब्रह्मा आवै कौन उपाई ॥
उपटि शरीर मैल गहि काढ़ी । पुत्रीरूप कीन रचि ठाढ़ी ॥
शक्ति अंशनिज ताहि मिलावा । नाम गायत्री तासु धरावा ॥
गायत्री मातहि शिर नावा । चरन टेकि रज शीस चढ़ावा ॥
गायत्री बिनवै कर जोरी । सुन जननी बिनती यक मोरी ॥
कौन काज मोंकह निरमाई । कहो वचन लेवँ शीस चढ़ाई ॥
कह अद्या पुत्री सुन बाता । ब्रह्मा आहि जेठ तव भ्राता ॥
पिता दरश कहँ गये अकाशा । आनहु ताहि वचन प्रकाशा ॥
दरश तातको वह नहिं पावै । खोजत खोजत जन्म सिरावै ॥
जौनी विधि वह ईहां आई । करहु जाय तुम तौन उपाई ॥
चलि गायत्री मारग जाई । जननी बचन प्रीति चित लाई ॥
गायत्री पहुँची तहँ जाई । ब्रह्मा जहाँ समाधि लगाई ॥
लगी समाधि ब्रह्मकी गाढी । गायत्री शोचे तहँ ठाढी ॥
केते द्यौस रही सो ताहीं । ब्रह्मा पलक उघारे नाहीं ॥
गायत्री तब शोचन लागी । कौन भाँति ब्रह्मा अब जागी ॥
निजु मनमें बहुतै अनुमानी । आद्या ताके ध्यान समानी ॥
आद्या ध्यानमें ताहि सिवाई । परसो निजकर ब्रह्मा पाई ॥
गायत्री पुनि कीनेहु तैसो । जननी युक्ति बतायो जैसो ॥
तिहि औसरसो मन चितलाई । परस्यो ब्रह्म चरन तब जाई ॥
ब्रह्मा योग ध्यान चित डोला । व्याकुल भयो ब्रह्म अस बोला॥
कौन आहि पापिन अपराधी । काहेको मोर छोडाय समाधी ॥

शाप देब तोको हम जानी । पिता ध्यान खंडेहु मोर आनी॥
कह गायत्री मोहि न पाया । बूझि लेव तब देहो श्रापा ॥
कहौं तोहिते सांची बाता । तोहि लेन पठयौ तो माता ॥
चलहु बेगि जननी पहँ जाई । तुम बिन रचना होय न भाई ॥
ब्रह्मा कहैं कौन विधि जाई । पिता दरश अजहूं नहिं पाई ॥
कह गायत्री दरशन पैहो । चलहु बेगि नहिं तो पछितैहो ॥
ब्रह्मा कहैं देहु तुम साखी । परस्यौ शीस देखा मैं आँखी ॥
ऐसो कहो मातु समुझाई । तब तुमरे सँग हम चलिजाई ॥
गायत्री कह यह है स्वारथ । कहब जानि मैं पुनि परमारथ॥
यहि विधि बोलब झूठी बाता । कौनी विधि तौ बूझे माता ॥
पुष्प गायत्री ब्रह्मा तीनी । एकमता तिहि औसर कीनी ॥
तीनों मिलिके चलि भये तहँवा । कन्या आदि कुमारी जहँवा ॥
करि प्रणाम सम्मुख रह जाई । माता सब पूछी कुशलाई ॥
कैसे दरश भो पिता सुभाऊ । ब्रह्मा सो सब मोहि सुनाऊ ॥
कहैं ब्रह्म दोनों हैं साखी । परस्यौ शीस देखा इन आँखी॥
तब माता बूझै अनुसारी । कहु गायत्री वचन विचारी ॥
तुम देखा इन दर्शन पावा । कहो सत्य दरशन परभावा ॥
तब गायत्री बचन सुनावा । ब्रह्मा दरश शीस पितु पावा ॥
मैं देखा इन परस्यो शीसा । ब्रह्माही मील्यौ जगदीशा ॥

छंद—ले पुष्प परस्यो शीस पितु इन दृष्टिमें देखत रही ।
जल ढारि पुष्प चढ़ाय दीनों हे जननि है यह सही ॥
माता कहे पुष्पावतीसे कहो सत्यहि मोसना ।
जो चढ़ेहु शीसपिताके तुम मोसे कहो तुम ततछना ॥

सोरठा—कहु पुष्पावति मोहिं, दरसकथा निरुवारिके ।
यह बूझौं मैं तोहिं, जिमि ब्रह्मा दरशन कियो ॥

चौपाई

पुष्पावती वचन अस बोले । माता सत्य बचन नहिं डोले ॥
दरसन शीस लह्यौ चतुरानन । चढ़न शीस यह धरि निश्चलमन॥
शाप सुनत आद्या अकुलानी । यह अचरज भो मरम न जानी॥
अलखनिरंजन असपुनिभाखी । मोकहँ कोइ न देखे आंखी ॥
तीनों बोलैं झूठी बानी । सुनि माता बहुतै अकुलानी ॥
यह सुनि माता कीनेहु दापा । ब्रह्माको पुनि दीनेसु शापा ॥
पूजा तोर करे कोइ नाहीं । जो मिथ्या बोल्यौ हम पाहीं॥
आगे हैहै शाप तुम्हारा । मिथ्या पाप करे बहु भारा ॥
प्रकट नियम बहु करै अचारा । अंतरमैल पाप बिस्तारा ॥
विष्णु भक्तसे कर हंकारा । ताते परे नरककी धारा ॥
कथा पुराण औरन समुझावै । चाल बिहीन आप दुख पावै ॥
उनत और सुने जो ज्ञाना । करै भक्ति सो कहो प्रमाना ॥
देवन पूजा, बहुबिधि लावै । दछिना कारन गलाकटावै ॥
जाकह शीस करे पुनि जाई । परमारथ तिहि नाहिं दृढ़ाई ॥
अपने स्वारथ ज्ञान सुनैहै । आपन पूजा जगहि दृढ़ैहै ॥
परमारथके निकट न जाई । स्वारथ अरथ सबै समुझाई ॥
गायत्री तोर वृषभ भतारा । पाँच सात अरु बहुत पसारा॥
धरि औतार अखज तुम खाई । बहुत झूठ तुम बचन सुनाई ॥
सुनो पुष्प तुमरो विश्वासा । होय विगंध मध्य तौ बासा ॥
जो तोहि सींच लगावै आनी । ताकर होय वंशकी हानी ॥
अब तुम जाय धरो औतारा । केवडा केतकी नाम तुमारा ॥

छंद–शाप तीनोंको दियो मनमाहँ तब पछितावई ।
कैसे करे मोहि निरंजन पल छमा मोहि न आवई ॥
आकाश बानी तब भई यह कहाँकी नभ बानिया ।
उतपत्ति कारन तोहि पठयौ कह चरित यह ठानिया॥

सोरठा–नीचहि ऊँच सताव, ओल मोहिते पाय हो।
द्वापर युग जब आव, तोहि पाँच भरतार हो॥

चौपाई

शाप ओल जब सुने भवानी। मनमें गुने कहे नहिं बानी॥
ओल प्रभाव आपते पाई। अब कह करो निरंजन राई॥
तुमरी वश्य परी हम आई। जस चाहो तस करो उपाई॥
आई माता विष्णु दुलारा। सुनहु विष्णु यक बचन हमारा॥
अब तुम बेगि पिता लगि जाई। बेगि पिताको परसहु पाई॥
आज्ञा पाय विष्णु तब चाला। पिता दरश कहँ गये पताला॥
अछत पुष्प लीने कर माहीं। चले पताल पंथ गम नाहीं॥
पहुँचे शेष नाग पहँ जाई। बिषके तेज विष्णु अलसाई॥
भयो श्याम विष तेज समावा। निरंकार अस बचन सुनावा॥
अहो विष्णु माता पहँ जाई। कहियो सत्त बचन समुझाई॥
सतयुग त्रेता जैहै जबही। द्वापर होय चौथा पद तबही॥
जब तुम ह्वै हो कृष्ण शरीरा। लेहु ओल सो कहो बलबीरा॥
जो जीव देय पीत जेहि काहू। हम पुनि ओल दिलावैं ताहू॥
नाथहु नाग कालिंदी जाई। अब तुम जाहु विलंब न लाई॥
बिल्लु पहूँचे जननी पासा। कीनो सत्त बचन परकाशा॥
भेत्यौ नाहिं मोहि पद ताता। विषके ज्वाल श्यामभो गाता॥
व्याकुल भयौ तबहि फिरि आई। पितादरश नाहीं हम पाई॥
सुनिकै हरषी आदि कुमारी। लीन विष्णु कहँ निकटदुलारी॥
चूम्यौ बदन शीश दियो हाथा। सत्य वचन बोल्यौ सुतगाथा॥
देहुँ पुत्र तोहि पिता भेटाई। तोरे मनको धोख छुड़ाई॥
प्रथमहि ज्ञान दृष्टि तुम देखो। बचन मोर हृदयमें पेखो॥
मनस्वरूप करि ताकर जानो। मनते दूजा और न मानो॥

स्वर्ग पताल दौर मन केरा । मन अस्थिर मन फिरै अनेरा ॥
छनमहँ कला अनंत देखावै । मनकहँ पेखि न कोई पावै ॥
निराकार मनहीको कहिये । मनके आस द्यौस निशि रहिये॥
देखहु पलटि सुन्नमें ज्योती । जहाँ झिलिमिलि झलके मोती ॥
यहिविधिविष्णुदरसपितुपायौ । भाँति भाँतिको रंग दिखायो ॥
श्वेत पीत हरितो जंगाली । रूप अनूप गगनमें भाली ॥
सुनि बाजा हियमें हरषाना । पिता दरसते अति सुख माना॥
बहुत अधीन मातुसे भेऊ । शीश नाय मृदु बानी कहेऊ ॥
तव प्रसाद मम मातु बिशेखा । पिताको दरश दृष्टिते देखा ॥
मातु गई पुनि रुद्रके पासा । देखि रुद्र मनमाहँ हुलासा ॥
दोय पुत्र कह मता बतावा । माँग महेश्वर तोहिं जो भावा ॥
हे जननी यह कीजै दाया । कबहुँ न विनसै हमरी काया ॥
कह जननी तुम ऐसे होही । साधो योग सत्य कहों तोही ॥
जबलों पृथ्वी अकाश सनेहा । कबहुँ न बिनसे तुम्हरी देहा ॥
तिहूँ सुतनको मता बताई । आदि पुरुषको नाम छपाई ॥
आद्या ऐसो छल बल कीना । पुरुष छपाय प्रकट यम कीना ॥
निरंकारको भेद बतावा । पुरुषसँदेश न सुनत सुनावा ॥
पुरुषभेद विष्णुहू न जाने । निरंकारको करता माने ॥
जैसो छल बल आद्या कीन्हा । सोई चला जक्तमें चीन्हा ॥
देखो ऐसो नारि स्वभाऊ । मात पिता कह सो बिसराऊ ॥
केतो प्रीति मातु पितु करही । कन्या एक न चितमें धरही ॥
गै पुत्री जब स्वामी गेहा । रात्यौ रंग तासुके नेहा ॥
मातु पिता सबही बिसरायौ । अपने पतिकी नारि कहायौ ॥
आदर मान खसमको होई । पिताको नाम लेय नहिं कोई ॥
ताते आद्या भई बिगानी । काल अंग ह्वै रही भवानी ॥

ब्रह्मा निज मन कीन उदासा । तब चलि गये विष्णुके पासा ॥
जाय विष्णुसे बिनती ठाना । तुम हो बुद्धिदेव परधाना ॥
तुमपर माता भई दयाला । हम तो आप बस भये बिहाला॥
निज करनी फल पायौं भाई । कैसे दोष लगावौं माई ॥
अब सोयतन करो हो भ्राता । चले परिवार वचन रहै माता ॥
कहैं विष्णु छोड़ो मन भंगा । मैं करि हौं सेवकाई संगा ॥
तुम जेठे हम लहुरे भाई । चित संशय सब देहु बहाई ॥
जो कोइ होवे भक्त हमारा । सो सब ही तुमरो परिवारा ॥
यज्ञ धर्म पूजा जो होई । विप्र बिना कछु होय न सोई ॥
जक्तमें ऐसो ज्ञान दृढावै । पुन्यफलनकी आस लगावै ॥
जो कोइ करे द्विजनकी सेवा । हरषित हौं तिहि विष्णूदेवा ॥

सोरठा–ब्रह्मा भये अनंद, जबहि विष्णु अस भाषेऊ ।
मेलो मनको द्वंद, साख मोर सुखते रहै ॥

चौपाई

ब्रह्मा भाष्यौ झूठ संदेशा । ताते ताको भयो अंदेशा ॥
विष्णु जो सांचो बचन सुनाया । माता कीन ताहिपर दाया ॥
शिव लजायके चुप है रहेऊ । झूठ सांच एको नहिं कहेऊ ॥
ढूँढत पिता तिहू गे हारी । पिताको रूप न कतहुँ निहारी ॥
माता कही बिहँसि निज बानी । ब्रह्मा झूठ झूठकी खानी ॥
शिव कछु झूठ सांच नहिं भाखो । ताते योग ध्यान चित राखो ॥
योग समाधि करो अब जाई । जटा रखाय बिभूति रमाई ॥
माता विष्णुसे बोलै बानी । तीन लोक करिहो रजधानी ॥
शिव ब्रह्मा करिहै तब सेवा । गन गंधर्व रचिहो मुनि देवा ॥
चार बरण ब्रह्मा निरमाई । चार वेद मत चार चलाई ॥
शिवके बरण भेद ना होई । क्रोध रूप धरि भेष बिगोई ॥

मातु जो दया विष्णुपर कीने । पिता देखाय निकटही दीने ॥
माता पिता एक मिलि गैऊ । विष्णु देखिके हर्षित भैऊ ॥
माता पिता सुत एकै ठैऊ ।विष्णुसमाधिज्योति मिलिगैऊ॥
तीनो मिलि जब एकै भयऊ । तिहि पीछे जग सिरजै लियऊ॥
तब माता अस बचन उचारा । रचो सृष्टि तुम तीनो बारा ॥
अंडज उत्पति कीनी माता । पिंडजको ब्रह्मा उतपाता ॥
उखमज खानि विष्णु ब्यौहारा । शिव थावरको कीन पसारा ॥
चौरासी लख जूनी कीना । आधा जल आधा थलदीना॥
नौलख जलके जीव बखाना । चौदह लख पंछी परमाना ॥
कृमी कीट सत्ताइस लाखा । तीस लक्ष अस्थावर भाषा ॥
चतुर लक्ष मानुष परमाना । मनुषदेह लह पद निर्वाना ॥
और योनि परचै नहिं पावै । तत्त्वहीन भव भटका खावै ॥
एक तत्त्व अस्थावर जाना । उखमज दोय तत्त्व परमाना ॥
अंडज तीन तत्त्वगुन जाना । पिंडज चार तत्त्व परमाना ॥
ताते होय ज्ञान अधिकारा । मानुष देह भक्ति अनुसारा ॥
अंडज खानि तीन ततव्यापा । वायू तेज तीसरो आपा ॥
थावर एक तत्त्व है पानी । उखमज वायु तेजते सानी ॥
पिंडज चार तत्त्वसे बरनी । पौनो पावक जल अरु धरनी ॥
पिंडज नरकी देह देह सँवारा । ताते पंच तत्त्व परमाना ॥
नर नारीमें तत्त्व समाना । ज्ञान बिभेद ताहुमें जाना ॥
चारो खानि जीव भरमावा । तब मानुषकी देही पावा ॥
पांच तत्त्व मानुष विस्तारा । तीनो गुण तेहिमाहँ सँवारा ॥
देह धरे छोडे जस खानी । तैसो ज्ञान लहै सो प्रानी ॥
प्रथम कहो अंडजकी खानी । दारिद्री निद्रा अलसानी ॥
चोरी चुगली निंदा माया । घर बन झाड़ी आगि लगाया॥

तृष्णा दूत भूत सेवकाई । रोवै कभीके मंगल गाई ॥
और को देत देखि पछिताई । गुरु सतगुरु चीन्है नहिं भाई॥
वेद शास्त्र सब देत उठाई । आपन मन सब ही दरसाई ॥
जगमें और तुच्छ सब आही । मोहि समान बड़ को जगमाही॥
मैले वस्त्र सो नहीं नहाई । आंखि चिपर मुख लार बहाई॥
पासा जूवा खेल अरु दाऊ । कूबर मूंड अरु लामा पाऊ ॥
दूजी उखमज खानि कहावा । ताते जो नर देही पावा ॥
जाय सिकार जीव कहँ मारा । बहुत आनंद होय तिहि बारा॥
बहुविधि मांसु रांधिके खाई । गुरुको मेटि करे अधिकाई ॥
निंदै नाम शब्द गुरु देवा । बहुत बात कथ ज्ञानको भेवा॥
झूठी बचन सभामें लाई । टेढी पाग छोर ओरमाई ॥
दया धर्म मनमें नहिं आवै । करे पुन्य तिहि हाँसी लावै ॥
माला तिलक अरु चंदन करई । हाट बजार चिकन पट धरई ॥
अन्तर पापी ऊपर दाया । सो जिव यमके हाथ बिकाया॥
लम्बा दन्त रु वदन भयावन । पीरे नैन ऊँच अनपावन ॥
तीजे अचल स्वानिको लेखा । देह धरेते होय जो भेखा ॥
छिनक बुद्धि होवै जिव केरा । पलटत बुद्धि न लागै बेरा ॥
झगा फेटा शिरपर पागा । राजद्वारसे वामे लागा ॥
घोडेपर होवै असवारा । तीर खड्ग अरु कमर कटारा ॥
इत उत सैन चित्तसे लावा । परनारीको सैन बोलावा ॥
पर घर रति कर चोरी जाई । शरमभाव उपजै नहिं भाई ॥
छन यकमें कर पूजा सेवा । छन यकमें बिसरै सो देवा ॥
छन यक मनमें सूरा होई । छन यक मनमें कादर सोई ॥
छन यक मनमें करे सुधर्मा । छन यक माहँ करे अपकर्मा ॥
भोजन करत माथ खजुआवै । बाँह जाँघ पुनि मींजत जावै ॥

भोजन करे सोय पुनि जाई । जो जगाव तिहि मारन धाई ॥
आँखी लाल होय पुनि वाको । और अनेक न लक्षण ताको ॥
चौथे पिंडज खानि सुनावों । गुन औगुनको भेद बतावों ॥
वैरागी उन मुनि मत धारी । धर्म पुण्य कर वेद विचारी ॥
तीरथ पुण्य अरु योग समाधी । गुरुके चरण चित बल बाँधी ॥
पढे पुराण कथे भल ज्ञाना । सभामें बैठि बात भल ठाना ॥
राजभोग कामिनि सुख माने । मनशंका कबहूँ नहिं आने ॥
धन संपति सुख बहुत सोहाई । लौंग सोपारी बीरा खाई ॥
खरचै दाम पुण्यमें सोई । हृदये सुख पुनि ताके होई ॥
चक्षु तेज ताकर अति मानी । परा कर्म देही बल ठानी ॥
देखो खड्ग सदा ता हाथा । प्रतिमा निरखि नवावै माथा ॥

सोरठा—छूटे नरकी देह, जन्म धरो फिरि आय जब ।
ताको कह्यो सनेह, धर्मदास सुन कान दे ॥

चौपाई

आयू आछत जिव मरिजाई । जन्म धरे मानुषको आई ॥
शूरा होय सो रणके माहीं । भै डर ताहि निकट न जाहीं ॥
माया मोह ममता नहिं व्यापे । दुरमति ताहि देखि डर कांपे ॥
सत्यशब्द परतीत कै आनै । निंदारूप कबहुँ ना जानै ॥
सतगुरु चरण सदा चित राखे । प्रेम रु प्रीति दीनता भाखे ॥
यहिविधि चारों खानि बनाया । सबमें रमे निरंजन राया ॥
कर्मजाल महँ सबै फँसाई । रेखाकर्म प्रत्यक्ष देखाई ॥
कर्मकी रेख लिखे सबमाही । ताते जीव भवमें भरमाही ॥
लिखे निरञ्जन कर्मको रेखा । ताते जीव धरे बहु भेषा ॥
कर्मरेख कबहूँ नहिं छूटे । फिर फिर जीव निरंजन लूटै ॥
चारि खानि रचिकियो पसारा । चार बरन पाखँड व्यौहारा ॥

तीन देव निज हुकम चलाई । अद्याहूको नाम छपाई ॥
तीन देव सेवैं संसारी । पूछै नहिं कोइ आदि कुमारी ॥
तब अद्या मनमाहिं बिचारा । मम सुत मेरो महातम टारा ॥
कीनो तब असि युक्ति भवानी । ऐसो कलारूप गुनखानी ॥
तीन शक्ति निज तन प्रकटावा । महामोहनी रूप बनावा ॥

दोहा-रंभा सूची रेनुका, तीन रूप निज कीन ।
गंधर्बनको मोहि मन, वश अपने कर लीन ॥

चौपाई

तिहूँ रूप मोहनी बनाई । सब गंध्रव निज संग गहाई ॥
भाँति भाँतिके बस्त्र अनूपा । भूषन भूषित अद्भुत रूपा ॥
छतिस भाँतिके बाजा लेई । चली त्रिदेवपाहँ तब येई ॥
राग रागिनी यकसठ जाती । महा मधुर सुर गाव सुभाँती ॥
तीन देव सुर नर मुनि झारी । निज बस करि लीने तिहुँ नारी ॥
जगमें अपनो अदल चलाई । जहँ तहँ शक्तीसेव थपाई ॥
तीनो देव निरंजन शक्ती । इन पांचोंकी सब कर भक्ती ॥
मन ॐकार निरंजन राई । अलख शून्य अविकार कहाई ॥
कैलकाल निर्गुन निरंकारा । धर्मराय यम ब्रह्म पुकारा ॥
इत्यादिक बहु यमके नामा । रमै सर्वमें सोई रामा ॥
जैसे तिलमें तेल समाया । तिमि सबमाहिं निरंजन राया ॥
मनसे और नहीं बरिबंडा । गाजै तीन लोक नौ खंडा ॥
सुर नरमुनिसब छलि छलि मारा । कोई जीव नहिं बचा कड़ारा ॥
रचना रूचिर अपार बनाई । सकल जीवको सो भरमाई ॥
कबहुँके हेठ कबहुँके ऊपर । कबहुँके डारि देय जिव भूपर ॥

पंजाबी भाषा-छंद झूलना

इत्थते उत्थ कर उत्थते इत्थ धर जित्थेही जाय जिव नाहिं छुट्टै ॥

भट्ट तिहुँ लोक है नट्ट जित जाइये तित्थही तित्थही काल कुट्टै ॥

सत्यकबीर वचन

तीन लोकमें लागी आग । कहैं कबीरा कहँ जैहो भाग ॥

चौपाई

पूर्व प्रसंग करो पुनि वर्णन । कूर्मपाहिं जिमि गये निरंजन ॥
तीन माथ जब ताको छीना । बहुरि शून्यमें बासा कीना ॥
कूर्म भये तिहि काल दुखारी । ध्यानमें पुरुषते बचन उचारी ॥
अहो पुरुष दाया भल कीना । मोकहँ धर्मराय दुख दीना ॥
यहि बिधि पुरुषपै कूर्म पुकारी । तब सतपुरुष दया उर धारी ॥
बोले तब अस पुरुष पुराना । सुनो कूर्म मम बचन प्रमाना ॥
यह तो काल भयो अन्याई । जो मैं ताहि देव बिनसाई ॥
तौ सबही रचना मिटि जैहैं । सोलह पुत्र सबहि बिनसै हैं ॥
सोलह पुत्र एक ही नारा । ताही सूत मध्य यह कारा ॥
विषयते रचित निरंजन देही । मम दरसन अब पाव न येही ॥
लक्ष जीव नित करे अहारा । सवालक्ष नित प्रति बिस्तारा ॥
यहि विधि आप दीन प्रभु तेही । परमपुरुष ढिग जाय न येही ॥
रचना करि पुनि भोजन करई । सबमें रमै न सो लखि परई ॥
षट दरसन छानवे पाखंडा । धर्म कर्म जहँलों महि मंडा ॥
सो सब आहि निरंजन खेला । गह जिव त्रिगुन शक्तिके मेला ॥
नाना भाँतिके धर्म चलाई । जक्त जीवको सो भरमाई ॥
एक विरुद्ध पंथ कर दूजा । नानाविधिको थापे पूजा ॥
सबहि भरमायके भोजन करई । कालकला नहिं जिव लखि परई ॥
चार मुक्ति जो वेद बखाना । सो सब देव निरंजन थाना ॥
योग युक्ति सब तासु पसारा । पुरुषद्वार ते परदा डारा ॥
मुक्तिपंथ नहिं पावै कोई । काल भ्रमावै सब नर लोई ॥

तप्त शिला यक नाम पुकारा । सब जिव पकरि ताहिपरजारा ॥
तप्त शिलापर जो जिव परही । हाय हाय करि चटपट करही ॥
तलफि तलफि जिव तहँ रहिजाही। भूनि भूनि सब यमधरिखाही ॥
केते युग जीवन धरि खायौ । जारि वारिके योनि भ्रमायौ ॥
जरत जीव जब कीन पुकारा । काल देत है कष्ट अपारा ॥
यमको कष्ट सहो नहिं जाई । हो साहिब दुःख टारो आई ॥
यहि विधि जिव जब कीन पुकारा। पुरुष दयाल दया उरधारा ॥
तब पूरुष ज्ञानीको टेरो । ज्ञानी सुनिये आज्ञा मेरो ॥

सत्यकबीर वचन

छंद–जब देखि जीवन कहँ बिकल तब दया पुरुष जनाइया॥
दया विधि सतपुरुष साहिब तबै मोहि बोलाइया ॥
कह्यौ मोहि समुझाय बहुविधि जीव जाय चितावहो॥
तुव दरशते जिव होय शीतल जाय तपत बुझावहो ॥
सोरठा–आपा लीनो मानि, पुरुष सिखावन शिर धर्‌यो ॥
तत्क्षण कीन पयान, शीस नाय सतपुरुषको ॥

चौपाई

आयो जहँ जहँ जीव सतावै । काल निरंजन जीव नचावै ॥
चटपट करे जीव तहँ भाई । ठाढ भयो मैं तहँ पुनि जाई ॥
मोहि देखि जिव कीन पुकारा । हो साहिब मोहि लेव उबारा ॥
तब हम सत्य शब्द गोहरावा । पुरुष शब्द ते जीव जुड़ावा ॥
सब जीवनमिलि अस्तुति लाई । धन्य पुरुष यह तपन बुझाई॥
यमते छोरि लेहु मोहिं स्वामी । दया करो उर अंतरयामी ॥

इति

अथ जीवनकी स्तुति–छंद तोटक

जय सत्य कबीर कृपाल घनं, दल दुष्टहनं पय पुष्ट जनं ॥

योग जीत अतीत पुनीत प्रभू, वपु धारण कारन तारन भू ॥
सत सुक्कृत सत्यस्वरूप सदा, जन ध्यावत पावत मुक्तिपदा ॥
मुकता मनिते जिव जो जुगता, मृतलोक सशोकन भौ भुगता॥
हम दीन दुखी किमि त्याग चहो, करुणामय हो करुणामयहो॥
करुणातन धार करी करुणा, करुणामयधौं करुणा वरुणा ॥
सुर सिद्ध बखानत खान दया,जिव देखि अनाथ सनाथ भया ॥
यहि ज्वाल जला यम भक्ष करे, बिन देव दयालको रक्ष करे ॥
यम जालिम जीवन जेर कियौ, सुधि लेत दयादधि देर कियौ ॥
सुख लेशन के तक लेश भरे, जगदीश परे जगदीश परे ॥
जिव काल करालके ज्वाल दहे, तर ऊपर भूपर धाय गहे ॥
हम जानि दयाल जो काल भजे, गुणग्राम प्रनाम सो नामतजे॥
घटवाह मलाह सलाह कहो, फिर कैलकि गैलको सैल न हो ॥
वह सिंह समान शिकार करे, प्रिय पीव बिना कह जीव तरे ॥
हरि केहरि देहरि पार करों, सरकार बडे बरकार करो ॥
भयभंजन रंजन दासनको, खल डाटत काटत फांसनको ॥
भवसागर झागर काल बली, तह जीवकि उक्ति न युक्ति चली ॥
नहिं एक उपाय बनाय बनी, करु काज गरीब निवाज गनी ॥
प्रभु पेखतही जिव शीतल है, श्रुति वेद पुराण बखानत है ॥
करुणा हग कोटिन काल हनै, खुगसिंधु कणा गिर बंधु बनै ॥
मतिधीर कबीर कबीर भजो, हितनाम प्रिया बिन नाम तजो ॥
तपखान कृशान शिला दहके, जरते प्रभु मारगते बहके ॥
तलफै तप तीख सभी तलते, बिन नाथ किने हन सोपलते ॥
निजु सृष्टि निवाज सुदृष्टि लखो, सिरपै समरत्थ जो हत्थ रखो॥
नरबाल बेहाल निहाल मही, दुखद्वंद दवारिन देह दही ॥
मनभौ मदमोचन लोचन है, जनरक्षक भक्षक पोचन है ॥

सबलायक नायक हंसनके, जिवमोषक पोषक अंशनके ॥
सरवोपर साहिब जीवनके, तुम जीवननाथ हो जीवनके ॥
प्रभुके भ्रमते यमते बजरे, यहि तप्त शिला पर आनि जरे ॥
तपिया जपिया न पिया परखे, विधि वेद लवेदन ते हरखे ॥
जिवकाज चले शिरताज सभी, महराज मयासुख साज सभी ॥
भवभार हरो करतार धनी, धमराय न पय दुखाय दुनी ॥
करि नेह बिदेह जो देह धृतं, शबदामृत जीव भे कृत्तकृतं ॥
मृत नायक सायक तीख हते, पद प्रीत प्रतीत सहीत गते ॥
परमारथि भारथि नाथ सदा, गहते लहते भव पाथ हदा ॥
जनजाय समाय अमाय पदा, शुभज्ञान फुरानन सान मदा ॥
मुनि मानस हंस मुनीन्द्रमता, समता लह पाय पता रमता ॥
तब नाम सुधा बसुधा जो पिया, न क्षुधा युगही युग जीव जिया॥
दुखिया हितआय महा सुखिया, लखि पीवहि जीव भये सुखिया ॥
कहँ और न दौर तो पौर परे, सरनी परनी करनी नखरे ॥
पद तीर कबीर शरीर जिते, लह सारभे ब्रह्म अकार तिते ॥
जग योनि जहान महान महा, गुरुदेवको भेव नते बलहा ॥
कमलापति क्यों कमलापति हो, पदकीरति कीरति कीरति हो ॥
मृगव्याध समाध अगाध गहे, कलपानसिरान न ध्यान लहे ॥
गुन गाय फनीं गणराय निती, नहिं पावत पार अपार गती ॥
लवलीन प्रवीन नवीन जसै, कलिपंक कलंक निशंक नसै ॥
बिषया बनराय भुलाय परे, दुखदौन बिनाकर कौन धरे ॥
कह कौन सँदेश अँदेश बड़ा, भग भूलि गई ठग आनि अडा ॥
शिव शोक कि झोकमें झूलि रहा, करता भरता भ्रम भूलि रहा ॥
तिहुँ लोक बिलोक लगीअगिनी, यह जामिन है यमकी भगिनी ॥
तब सूरको नूर जहूर हुआ, ममता रजनी दुख दूर हुआ ॥

सगरे झगरे रगरे बगरे, पशुज्ञान गहे डगरे डगरे ॥
बकचाल सभी न मरालमती, बिन एक रतीबन एकरती ॥
जब गर्भमें अर्भक अर्ज करे, तिहि गाढते साहिब गाढि धरे ॥
इत औरहि ढालको ख्याल खिला,बुधि खप्त मरे यहि तप्त शिला॥
वह औध अचेत सुखोपति सो, कह पाय पराग बनारसको ॥
निज धामते राम पयाम लिया, जगती भगती पद पाय पिया॥
कित ह्वो झलकी मनसा मलकी, अरु अंध अचेतकिभयटलकी ॥
द्रुगदानि कि वानि विहानि इतै, मकरंदके फंदको जीव जितै ॥
मृतशृंगन बिंग बिहार करे, क्रम रेख विशेष न देख परे ॥
नहिं क्रोधित अंध कि गंध मिले, जिव दंडक भंडक भीर हिले॥
गुरुपीर कबीर उजागर है, भव बोहित सोहित सागर है ॥
जगबंदन भर्म निकंदन है, सरनी सतलोककि संदन है ॥
सतनाम सनेह सुधाम चढे, कलिमा कलिमा कलिमाह पढे ॥
गुणग्राम निकाम कबीर कवी, जस गावत पावत कोटि छबी ॥
धुरधर्म धराधर धार कहो, भवतारक पंथ प्रचार कहो ॥
नर पामर घामर बुद्धि बिना, यमज्योति पतंगके ढंग बना ॥
जग व्याधि रु आध असाध करे, चरणाम्बुज चूरण चारु हरे ॥
भवतारन हेत निकेत कृपा, पयगाम लियौ सुखधाम नृपा ॥
सुरभूप स्वरूप अनूप छिपा, रवि सोम जो कोटि करो मदिपा॥
गुरुगुप्त कियौ धुरको बरनं, भव भौंर भयावन तौ शरनं ॥
हमरे उरके पुर बास करो, निज दासनको अब दास करो ॥
बिन कंतके भौ जलजंत घने, दुखद्वंद्व कफंद कफंद फने ॥
जगमाह कि बाह निबाह लहे, भ्रम भो डरभे डरभीर बहे ॥
दनुजात बलात निपात भये, रणधीर बहीर गहीर गये ॥
जिहि जानत जान सुधाम धरे, मुनिके मन मंदिरमें बिहरे ॥

मनमत्त मतंग मते यहि गौं, तुहि रावत होय महा उतजौं ॥
चितचञ्चर बञ्चर बञ्चक है, समसञ्च बिरञ्च न रञ्चक है ॥
यम बंकट संकट जीव महा, दमको गमको रमको न रहा ॥
भवसेत अभय पद देत तुही, कलिकंटक कोटिन कर्म दही ॥
चढि सेत पपीलन ढील तहाँ, लँघि दीन पयोनिधि पीन महाँ ॥
नहिं वज्रको हाड न चाड रहो, मन वाक शरीर कबीर कहो ॥
गुरु नेह न दीसन दीस जिन्हैं, सुखवासन आस है त्रास तिन्हैं ॥
तुम दीनन बन्धु न पीननके, नित पास हो दास अधीननके ॥
मद मान मलान हिये अरभौ, नर नागर सागर भौ गरभौ ॥
करि पाप कलाप करे दुनिया, विष बीज अमीफल को लुनिया ॥
हरिमें हरिमें हमही वरषे, लहरी भवभक्ति हरी हरषे ॥
दुखदारिद वारिद ज्ञानघनं, निरभय करि भय शमनं शमनं ॥
जिव कालके जाल परे बपुरे, सतनाम निकाम सदा जपु रे ॥
गुरुभक्ति निनार किनार गहे, चतुरे लुतरे भवधार बहे ॥
भ्रमभूलते मूलते जात भगे, बुध बालन डालन पात लगे ॥
मन बाचक याचक हौं दरको, तुम छोड अजोड सभी घरको ॥
प्रभु नामको दान निदान चहो, कोइ आसरुबास बिकाश न हो ॥
तरनी बरनी तव नाम जहां, गहिये लहिये बिशराम तहाँ ॥
रसना रसरास रसै रससो, जसतौ बस और सबै कस हो ॥
चढ नाम रथा गइ बीत विथा, रसना रसना बिन कीर्त कथा ॥
पदपंकज प्यार जो छूटि गया, अरु सूत सनेहको टूटि गया ॥
ठग ठाकुर आनिके जूटि गया, जगजीवनकी बुधि छूटि गया ॥
रहगी रमते बड़ि भीर भई, सतपंथ विहाय कुपंथ लई ॥
गुरुभक्ति बिना भव भूलि परे, शरणागत पाहि कबीर हरे ॥

दोहा–यह कबीर पंचाशिका, पढै सप्रीति प्रतीत ।
परम पुरुष पद पावही, काल कष्ट जा बीत ॥

इति श्रीकबीर पंचाशिका

सत्यकबीर वचन--चौपाई

तब हम कहा जीव समुझाई । जोर करो तो बचन नसाई ॥
जब तुम जाय धरो नर देहा । तब तुम करिहो शब्द सनेहा ॥
पुरुष नाम सुमिरन सहिदानी । बीरा सार करो परमानी ॥
देह धरे सत शब्द समाई । तब हंसा सतलोकहि जाई ॥
देह धरे कीने जहँ आसा । अन्तकाल लीनो तहँ बासा ॥
अब तोहि कष्टभयौ जिव आनी । ताते यहि बिधि बोलो बानी ॥
जब तुम देह धरो जग जाई । बिसरे पुरुष काल धरि खाई ॥

जीव वचन--चौपाई

कहै जीव सुन पुरुष पुराना । देह धरे बिसरो नहिं ज्ञाना ॥
पुरुष जानि सुमिरौं यमराई । वेद पुरान कहैं समुझाई ॥
वेद पुरान कहै मत येहा । निराकारसे कीजै नेहा ॥
सुर नर मुनि तैंतीस क्रोरी । बंधे सबहि निरंजन डोरी ॥
ताके मत कीने हम आसा । अब यह जानि परा यमफांसा ॥

ज्ञानी वचन--चौपाई

सुनो जीव यह छल यमकेरा । यह यमफन्दा कीन घनेरा ॥

छंद–कला कला अनेक कीनो जीव कारन ठाट हो ।
वेद पुरानो शास्त्र स्मृती याते रूँध्यो बाट हो ॥
आप तनधरि प्रकट ह्वै यम सिफत आपन कीनहो ।
नाना गुन मन कर्म फाटो जीव बंधन दीन हो ॥

सोरठा–कला कला परचण्ड, जीव परे बस कालके ।
जन्म जन्म सह दण्ड, सत्यनाम चीन्हे बिना ॥

चौपाई

छन यक जीवनको सुख दैऊ । जिव बँध मेटि पुरुषपहँ गेऊ ॥

अथ जीवमुक्तावन हेत सत्य कबीरको संसारमें आगमन कथा–चौपाई

यहि विधि कालजक्त धरि खायौ । जिव नहिं कोई मुक्तिपद पायौ॥
तीनों पुर पसरा यमजाला । सकल जीव कहँ कीन बिहाला॥
कालके करते जीव न छूटे । बहुविधि योगयुक्तिमें जूटे ॥
बिनशत शब्द न जीव उबारा । तब समरथ अस बचन उचारा॥

सत्य पुरुष वचन–चौपाई

कैल सकल जग बारच्यौ खाई । एको जीव लोक नहिं आई ॥
तातै समरथ मोहि फरमाई । साँचे जीव आन मुक्ताई ॥
पुरुष वचन कीने तिहि बारा । ज्ञानी बेगि जाहु संसारा ॥
प्रथमहि चल्यौ जीवके काजा । पुरुष प्रताप शीस पर छाजा ॥
सतयुग सत्य सुकृत मोर नाऊँ । आज्ञा पुरुष जीव बर आऊँ ॥
करि परनाम तब पगधारा । पहुँच्यौ आय धर्म दरबारा ॥
द्वीप झांझरी नाम बखानी । कैल पुरुषकी सो रजधानी ॥
पगके देत झांझरी गाजा । कैल पुरुष बैठा तहँ राजा ॥
गये झाझरी द्वीप मँजारा । गर्बित काल न बुद्धि विचारा॥
मोकहँ देखि धर्म ढिग आई । महाक्रोध बोले अतुराई ॥
योगजीत इहवाँ कस आवो । सो तुम हमसे बचन सुनावो ॥

योगजीत वचन–चौपाई

तासो कह्यौ सुनो धर्मराई । जीवकाज संसार सिधाई ॥
तुम तो कष्ट जिवनको दीना । तबहि पुरुष मोहि आज्ञा कीना॥
जीव चिताय लोक ले आवो । काल कष्टते जीव छोड़ावो ॥
ताते मैं संसारहि आवो । देय परवाना लोक पठावो ॥

अथ कालपुरुष और सत्यकबीरका युद्धवर्णन–चौपाई

काल क्रोध करि वचन उचारा । भवसागरमें राज हमारा ॥

तुम कस जिव मुक्तावन आवा । मारो तोहि अबहि भलदावा ॥
काल अनंत रूप तब धारा । योगजीत कह आनि प्रचारा ॥
महाभयंकर रूप बनावा । गज स्वरूप ह्वै सम्मुख धावा ॥
सत्तरयुग हम सेवा कीना । पुरुष मोहि भवसागर दीना ॥
परमपुरुष सेवा वस भैऊ । राज तिहूँ पुरको मोहिं दैऊ ॥
तब तुम नारि निकारौ मोही । योगजीत नहिं छोडो तोही ॥
अस कहि धाय सुंड फटकारा । दंतसो योगजीत पर मारा ॥
योगजीत कै लहि ललकारा । गहि कर सुंड दूर तिहि डारा ॥
पुरुषप्रताप सुमिर मन माहीं । मारयो सत्य शब्द से ताहीं ॥
ततछन ताहि दृष्टि पर हेरा । श्याम लिलार भयौ तिहिकेरा ॥
पंख घात जिमि होय पखेरू । तैसे कैल मोहि प्रति हेरू ॥
जब फटकार कर गहे डाला । भागा काल पैठ पाताला ॥
गयौ पाताल कूर्मके आगे । योगजीत गये पीछे लागे ॥
बिनती करे कूर्मसे जाई । राखो कूर्म शरन हम आई ॥
योगजीत मोहि मारि निकारा । जिव ले जाय पुरुष दरबारा ॥
युगन युगन हम सेवा कीना । पुरुष मोहि भवसागर दीना ॥
एक पायँ हम ठाढे रहेऊ । तबहि पुरुष सेवा सब भैऊ ॥
तीन लोक दीना मोहि हारी । अब कस मोकहँ मारि निकारी ॥
जाय कूर्मकी शरन जो परेऊ । तब ताने दाया उर धरेऊ ॥

कूर्मवचन--चौपाई

तबै कूर्म उठि बिनती लाई । को तुम आहु कहाँ ते आई ॥
अपनो नाम कहो मोहि स्वामी । पुरुष अंश तुम अंतरयामी ॥

योगजीत वचन--चौपाई

तब हम कहा नाम मोर ज्ञानी । योगजीत हम अंश बखानी ॥
समरथ बचन जीव बर आवा । काल फाँस जीवन मुक्तावा ॥

कैलवचन

सुन ज्ञानी मोर वचन अलेखा । अपने मनमें करो बिवेका ॥
सत्तर युग हम सेवा कीना । पुरुष बकसि भवसागर दीना॥
समरथ बचन दीन मोहि हारी । तीन लोक पायौ संसारी ॥
तबकी बात रहित भै भाई । अब कस उलटी अदल चलाई॥
सबै अंश भुक्तै रजधानी । हमपर कोप भयौ तुम ज्ञानी ॥
अब जस निरणय हमै सुनावो । तस सीषा पन जानि चलाओ॥

कूर्मवचन

तबै कूर्म बोले अस बानी । बिनती एक सुनो हो ज्ञानी ॥
जो तुम बिनती मानो मोरा । तौ हम तुमसे करें निहोरा ॥
तुमहू कैल बचन जौं मानो । तौ हम ज्ञानी निर्णय ठानो ॥
ज्ञानी सुनौ पुरुष कै अंशा । धर्मरायको मेटो संसा ॥
चौका पान कजाव तुमारा । लोक वेदको काल पसारा ॥
जो कोइ करे जोर बरियाई । तौ हम ताके संग न भाई ॥
कूर्म जबै अस बिनती ठानी । ज्ञानी कैल दोहू सुख मानी ॥
फिरके कैल झांझरी आनो । ज्ञानी कैलको बचन सुनावो ॥

ज्ञानी और कालपुरुषकी वार्ता--चौपाई

बिना शीसके यमकी देही । काल पुरुषको चीन्ह है येही॥
सत्य कबीरसे बिनय उचारी । सुनिये ज्ञानी अरज हमारी ॥
अपनी देह नाथ मोहि दीजै । ऐसी मोपर दाया कीजे ॥
ताको वचन मानि हम लीना । अपनी देहको कैलको दीना ॥
शीश समेत और बिन माथा । दोनों देह निरंजन साथा ॥
जब चाहे तब शीस देखाई । निज इच्छा पुनि ताहि लोपाई॥
जो साधू बैराट निरेखे । सो यह कौतुक नैनन दीखे ॥
रूप बिराट शून्यमें निरखे । निजु आगूको लेखा परखे ॥
जब षटमास मरन रहि जावे । काल कबीर कि देह छपावे ॥

अपनी देह देखावै काला । तब साधू जाने जंजाला ॥
बिना शीस जब दरसै देहा । काल पुरुष तब जाने येहा ॥
मरन काल निज साधु निहारी । होहि सचेत लगावै तारी ॥

निरंजन वचन

सोरठा–तुमहुँ करो बखशीश, पुरुष जो दीनो राज मोहि ।
षोडशमें तुम ईश, ज्ञानी पूरुष एक सम ॥

ज्ञानी वचन--चौपाई

ज्ञानी कहै सुनो धर्मराई । जीवनकहँ मैं आन बचाई ॥
पुरुष आज्ञाते मैं चलि आवों । भवसागरते जीव मुक्तावों ॥
पुरुष अवाज टार यहि बारी । तौ मैं तोकहँ देब निकारी ॥

शब्द

अपने नामकी सोंकर गह मैं पाटि डरी हो ।
तना तनतकै बेटवा मारे निधिया गई बौराई ॥
देहरि चढ़िके मेहरि मारे निई देखो गरुवाई ।
पखा फोरि द्वैचोखा निकसे बीचमें मिलि गई हस्ती॥
सोटा चार कमरमें मारेनि निकर गई अलमस्ती ।
आसन लूटेनि वासन लूटेनि लूटे तिनपाई पौवा ॥
ताल अस मोर सनहक लूटी हांड़ी चलावन डौवा।
हँसियाको बेंट कोदोकै भूसी ईमोर न्यामत लूटी ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो दुविधा गै अब छूटी ।

निरंजन वचन--चौपाई

धर्मराय अस बिनती ठानी । मैं सेवक दुतिया नहिं मानी ॥
ज्ञानी बिनती एक हमारा । सो न करो मोर होय बिगारा ॥
पूरुष मोकहँ दीनो राजू । तुमहू देव होय तब काजू ॥
बिनती एक करो हो ताता । दृढ़ करि जान्यौ हमरी बाता ॥

कहा तुमार जीव नहिं मानै । हमरी दिशभै वाद बखानै ॥
मैं दृढ़ फंदा रच्यौ बनाई । जामें जीव परा अरुझाई ॥
वेद शास्त्र सुमिरन गुन नाना । पुत्र हैं तीन देव परधाना ॥
देवल देव पखान पुजाई । तीरथ व्रत जप तप मन लाई ॥
यज्ञ होम अरु नियम अचारा । और अनेक फंद हम डारा ॥
जौं ज्ञानी जैहो संसारा । जीव न मानै कहा तुमारा ॥

ज्ञानी वचन--चौपाई

ज्ञानी कहै सुनो धर्मराई । काटो फंद जीव ले जाई ॥
जेतो फंद रची तुम भारी । सत्यशब्द ले सकल बिडारी ॥
जिहि जिवको हम शब्द दृढैहैं । फंद तुम्हार सबै मुक्तैहैं ॥

निरंजन वचन चौपाई

सतयुग त्रेता द्वापर माहीं । तीनों युग जिव थोरे रहिजाहीं ॥
चौथा युग जब कलऊ आई । तब तुव शरन जीव बहु जाई ॥
ऐसे वचन हारि मोहि दीजै । तब संसार गौन तुम कीजै ॥

ज्ञानी वचन चौपाई

अरे काल परपंच पसारा । तीनो युग जीवन दुख डारा ॥
बिनती तोरि लीन मैं मानी । मोकहँ ठगे काल अभिमानी ॥
चौथा युग जब कलऊ आई । तब हम अपनो अंश पठाई ॥
काल फन्द छूटे नर लोई । सकल सृष्टि परवानिक होई ॥
घर घर देखो बोध बिचारा । सत्य नाम सब ठौर उचारा ॥
पांच हजार पांचसौ पांचा । तब यह बचन होयगा सांचा ॥
कलियुग बीत जाय जब येता । सब जिव परम पुरुषपद चेता ॥

निरंजन वचन चौपाई

ज्ञानी बिनती सुनो हमारी । द्वापर अंत होय जिहि बारी ॥
बौध शरीर धरब हम जाई । जगन्नाथको नाम धराई ॥

राजा इंद्रदौन पहँ जैहैं । मेरो मंदिर सोई उठै हैं ॥
तब समुद्र ढाहनको धावै । मंदिर मेरो तोरि बहावै ॥
कृपा करो तब तुम तहँ जाई । मेरो मन्दिर देहु थपाई ॥
जो हंसा तुमरो गुण गाई । ताके निकट तो हम नहिं जाई ॥
जो कछु वर माँग्यो धर्मराया । सो ज्ञानी दीनो करि दाया ॥
धर्मराय उठि शीस नवाई । तब ज्ञानी संसारहि आई ॥

इति

अथ सतयुगमें ज्ञानीजीको मृत्युलोकमें आगमनकथा और सत्य सुकृत नाम धारण और जक्त जीव तारण--चौपाई

ज्ञानी योगजीत कहलाये । सत्यसुकृत मुनींद्र बतलाये ॥
पुनि अचिंत मुक्तामणि होई । योग संतायन कहिये सोई ॥
अविनाशी करुणामय जानी । कबीर आदि बहुनाम बखानी ॥
चारों युगके चारों नामा । सतयुग सत्यसुकृत गुणधामा ॥
त्रेतामाँह मुनींद्र नामधर । करुणामय स्वामी कह द्वापर ॥
कलियुगमाहँ कबीर कहाये । हिंदू मुसलमान गुण गाये ॥
सैद अहमद कबीर बखाना । शेख कबीर कहे मुसलमाना ॥
सोई सकल जक्त गुरु पीरा । नाम अनेकन ताके तीरा ॥
देश देशमें नाम है न्यारा । सारे जीव जक्तको तारा ॥
वेद पुराण जासु गुण गावै । नाम अनंत जासु निरतावै ॥
आदिकाल जब सतयुग आया । सत्यसुकृत सो नाम धराया ॥
तीन देवते कीन पुकारा । सो नहिं माने मन हंकारा ॥
प्रथमहिं जब पृथ्वीपर आये । नृप घोघल कह नाम दृढाये ॥
सतगुरु चीन्हि चरण लपटाना । नरनायक लह पद निर्वाना ॥
पुनि सतगुरु मथुरामें आई । खेमसरी तिय तहाँ रहाई ॥
खेमसरी ग्वालिनिहि चितावा । कुल परिवार सहित मुक्तावा ॥

पुनि सत सुकृत लोक सीधारा । पहुँच हंस पुरुष दरबारा ॥
पुरुष दरश सब हंसन पाई । कोटि सोम रवि रोम लजाई ॥
पुरुष स्वरूप भये सब हंसा । बीती सब यमकी भ्रम शंसा ॥
कछु दिन कीने लोक निवासा । बहुरि आय देख्यो निजदासा॥
निशि दिन रहौं गुप्त जगमाहीं । मोकहँ कोइ जिव चीन्हत नाहीं॥
जिहि जीवन परबोध्यौ आई । दीन्हों तिनको लोक पठाई ॥
सत्यलोक हंसनको बासा । सदा वसंत पुरुषके पासा ॥

इति

सतयुगका वृत्तान्त

अथ त्रेतायुगमें सतसुकृतजीको पृथ्वीमें आगमनकथा और
मुनींद्रनाम धारण और जवत जीवतारण

सत्तकबीर वचन–चौपाई

सतयुग गत है त्रेता आवा । नाम मुनींद्र जीव मुक्तावा ॥
जब आयो जीवन उपदेशा । धर्मराय उर हुआ अँदेशा ॥
इन भवसागर मोर उजारा । जिव ले जाय पुरुष दरबारा॥
कितनो छल बल करो उपाई । ज्ञानी डर मोर नाहिं डेराई ॥
पुरुष प्रताप ज्ञानीके पासा । ताते मोर न लागे फाँसा ॥
इनते काल बसावे नाहीं । नाम प्रताप जीव घर जाहीं ॥
छंद–सतनामके परताप धर्मन हंस निज घरको चले ॥
जिमि देखि केहरि त्रास गज हो कंपिके धरनी रले ॥
पुरुष नाम प्रताप केहरि काल गज सो जानिहै ॥
नाम गहि इसलोक पहुँचे बहुरि भव नाहिं आनिहै ॥
सोरठा–सतगुरु शब्द समाय, गुरु आज्ञा निरखत रहै ।
रहै नाम लौ लाय, कर्म भर्म ममता तजे ॥

चौपाई

त्रेतायुग तबही पग धारा । मृत्युलोक कीनो पैसारा ॥

जीव अनेकन पूछेहु जाई । यमसे को तोहि लेय छोड़ाई ॥
कहै कर्म वश जिव अज्ञाना । हमरे कर्ता पुरुष है ध्याना ॥
विष्णु सदा हमरे रखवारा । यमसे मोहि छोडावनहारा ॥
कोई महेश कि आसा लावै । कोइ चंडी देवीको गावै ॥
कहा करो जिव भयो बिगाना । खसम छोड़िकर जार बिकाना॥
भरम कोठरी सब जग डारा । धोखा दे यम जीवन मारा ॥

साखी सोई काल सोई है करता, भक्ति मुक्ति तिहि हाथ ।
हमरो कहा न आदरे, मन यम जिवके साथ ॥
परपंची निरंजन, मन सोई ओंकार ।
फंदे तीनों लोक सब, कोई न पावै पार ॥

चौपाई

सत्यपुरुषको आयसु पावो ।कालहि मेटि छोरि जिव ल्यावो॥
जोर करो तो वचन नशाई । सहज जीवन लेहु चेताई ॥
जो ग्रासे जिव सेवै ताही । अनचीन्हे यमके मुख जाही ॥
चहुँदिशि फिर आयौ गढलंका । जहँवाँ रावण बसै निशंका ॥
भाट विचित्र पर्‍यौ गुरुचरना । पायौ अमर धाम गहि शरना ॥
मंदोदरी प्रेममें पागी । सतगुरुके सो चरनन लागी ॥
रानीको दीनो गुरुदिच्छा । पूरन भई तासुकी इच्छा ॥
पुनि आयौ रावण दरबारा । जहाँ पौरिया रह रखवारा ॥
कह्यौ पौरियाते तब जाई । रावणको मम पांह बोलाई ॥
जबहि पौरिया खबरि जनाई । सिद्ध एक प्रभु तुमहिं बोलाई ॥
सुनि प्रभु क्रोधकीन तेहि बारा । तैं मतिहीन आहि प्रतिहारा ॥
शिवसुत मोर दरश नहिं पावै । भिक्षुक मोकहँ कहा बोलावै ॥
यह मत ज्ञान हर्‍यौकिन तोरा । जो तू मोहि बोलावन दोरा ॥

हे प्रतिहार सुनो यह बानी । सिद्धरूप तुम कहो बखानी ॥
कौन बरन अरु कौन है भेखा । मोसन कहो दृष्टि जो देखा ॥
अहो राव तिहि श्वेत स्वरूपा । श्वेतहि माला तिलक अनूपा ॥
शशिसमान तिहि रूप बिराजा । श्वेतबरन सब श्वेतहि साजा ॥
मंदोदरि कह सुन रावण राजा । यह तो रूप पुरुषको साजा ॥
बेगिहि आय गहो तुम पाई । तौ तुव राज अटल ह्वै जाई ॥
छोड़िहो अपनो मान बड़ाई । गहो चरण तिहि शीस नवाई ॥
रावण सुनत क्रोध अति कीना । जरत हुताशन जनु घृत दीना ॥
रावण चलो अस्त्र गहि हाथा । तुरत जाय तिहि काटो माथा ॥
मारो ताहि शीस खसि परई । देखो भिक्षुक कहा मोर करई ॥
जहँ मुनींद्र तहँ रावण आई । सत्तर बार तरवार चलाई ॥
लै मुनींद्र यक तृणको ओटा । अतिबल रावण मार्‍यो चोटा ॥
रावण अस्त्र अफल जब भयऊ । तब खिसियायके सो रहि गयऊ ॥
तृण मुनींद्र लीने यहि भावन । बल तुमार देखो नृप रावण ॥
काटे जो तृण कटै न तेरे । कौन भाँति शिर खंडे मेरे ॥
मन्दोदरी कहै समुझाई । हे नृप सतगुरुको गहु पाई ॥
रावण कहे सहित अभिमाना । सेवों शिव नहिं जानों आना ॥
जाने अटल राज मोहिं दीना । ताहि दंडवत पलपल कीना ॥
ऐसो वचन मुनींद्र पुकारी । हो रावण तुम गर्व प्रहारी ॥
भेद हमारा तुम नहिं जानी । वचन एक तोहि कहौं बखानी ॥
रामचंद्र तोहि मारैं आई । मांस तुम्हार स्वान नहिं खाई ॥
रावणको कीनो अपमाना । औध नग्र कह कीन पयाना ॥
मारगमाहँ चलो जब जाई । मधुकर विप्र मिला तब आई ॥
सो मुनींद्रके चरनन परेऊ । अतिसै प्रेम मोद मन भरेऊ ॥
तापर सतगुरु कीनी दाया । सहित कुटुम निजलोक पठाया ॥

रामचन्द्र वन भये दुखारी । तबहिं मुनींद्र तहाँ पग धारी ॥
योग युक्ति रघुपतिहि दृढ़ाई । बहुबिधि ताकहँ शांति धराई ॥
जब मुनींद्रजी दाया कीने । सेत बांधि लंका पग दीने ॥
मन संशय कीने हनुमाना । सतगुरु कृपा लह्यो दृढ़ ज्ञाना॥
गरुड़ जो परम प्रेमते ध्याये । परम हंसकी पदवी पाये ॥
यहि विधि केते जीव चेताई । तब मुनींद्र निज लोक सिधाई॥
पहुँचे हंस पुरुष दरबारा । दरस पाय दुख हंस बिदारा ॥
कछुक दिवसजबयहिबिधि बीते । त्रेता गत द्वापर तब थीते ॥

इति त्रेतायुगवृत्तान्त

अथ द्वापर युगमें मुनींद्रजीको पृथ्वीमें आगमन कथा और करुणामय स्वामी नामधारन और जवतजीव तारन--चौपाई

पुरुष अवाज भई तेहि बारा । ज्ञानी बेगि जाहु संसारा ॥
परम पुरुष कह शीस नवाई । महि मंडल मुनींद्र चलि आई॥
जो प्रभु आहि नाम अरु नामी । द्वापर कह करुनामय स्वामी ॥
प्रथमहि जब भूलोक सिधारे । गढ गिरनार तहां पग धारे ॥
चंद्रबिजय नृप नाम बखानी । गढ गिरनार तासु रजधानी ॥
परम भक्ति मय ताकी रानी । इंद्रमती तेहि नाम बखानी ॥
साधुसे परम प्रीति सो धारे । नित साधुनकी बाट निहारे ॥
साधुको जहँ कहुँ आवत हेरे । नित्त आपने ढिग सो टेरे ॥
परम प्रीतिसे सेवा धारे । तन मन धन साधुनपर वारे ॥
तासु प्रीतिकी रीति बिचारी । करुनामय स्वामी पग धारी ॥
जात चले तेहि मारग माहीं । रानीको मंदिर रह जाहीं ॥
देखे रानी चढ़ी अटारी । साधु जानि हरषित भइ भारी॥
त्वरित पठायो तहँ निज चेरी । बेगि साधुको आनहु टेरी ॥
वृषली चलि हमकहँ शिर नावा । रानीको संदेश सुनावा ॥

महाराज दाया चित दीजै । भूपति भौन गौन अब कीजै ॥
करुणामय स्वामी कह ताहीं । हम नहिं भूपतिके गृह जाहीं ॥
राज काज है मान बड़ाई । हमैं साथ ना नृप घर जाई ॥
पुनि वृषली रानी ढिग आवो । साधु न आवै मोर बोलावो ॥
यह सुनि इंद्रमती उठि धाई । करुनामयके पद शिर नाई ॥
मोपर दाया कीजै नाथा । मो गृह चलिये करो सनाथा ॥
रानीकी लखि प्रीति अपारा । करुणामय तिहि भौन सिधारा॥
ताके भौन जबहि पग दीनो । चरण धोय चरनोदक लीनो ॥
रानी चरनामृत करि पाना । बहुतभांति कीने सनमाना ॥
कीन सेव भल हिय हर्षाई । पीछे ज्ञान सुननको आई ॥
सुनि गुरुज्ञान प्रीति अति बाढ़ी । चरनन लागि प्रेममें गाढ़ी ॥
नाथ मोहि गुरुदीक्षा दीजै । अपनी शरन माहिं अबलीजै ॥
रानीको गुरुदीक्षा दीना । राजा चंद्रबिजय नहिं लीना ॥
रानीको निज लोक पठाया । सो सतगुरुसे बिनय सुनाया ॥
हे प्रभु नृपको करो उबारा । यद्यपि वह नहिं शिष्य तुमारा॥
भावभक्ति रानीके काजा । सतगुरु कृपा तरो सो राजा ॥
यहिबिधिजिनजिनगृहगुरुज्ञाना । सो सब सत्यलोक कर थाना ॥
हंसनको सतलोक ले जाई । तहाँ आप कछु काल बिताई ॥

इति द्वापर युग

अथ कलियुगमें करुणामय स्वामीको पृथ्वीमें आगमन कथा
और सत्य कबीर और सैयद अहमद कबीर शेख कबीर
नामधारण और जग जीव तारण--चौपाई

द्वापर जगको अंत जो पाया । पुरुष बचन तब टेरि सुनाया ॥
ज्ञानी बेगि जाहु मर्त्य लोका । नाश करो जीवनको शोका ॥
सत्य पुरुषको करो प्रणामा । तब ज्ञानी पहुँचे नर धामा ॥

प्रथमहि मृत्युलोक जब आये । कलियुग नाम कबीर कहाये ॥
हिंदू मुसलमान गुरुपीरा । मिश्रित नाम कहाव कबीरा ॥
प्रथमहि प्रकट भये चलि काशी । तहाँ आपनो ज्ञान प्रकाशी ॥
नग्रमें जबहिं धरे निज पाई । श्वपच सुदर्शन तहाँ रहाई ॥
ताने सतगुरुको पहिचाना । चरनन लागि गह्यो दृढ़ ज्ञाना ॥
जब सतगुरुकी दीक्षा पाई । करे भक्ति सो मन चित लाई ॥
श्वपच करे भक्ती मन लाई । मात पिता देखै हर्षाई ॥
भक्ति पुत्र लखि हरषित होई । सतगुरु दीक्षा लियो न दोई ॥
ताही काल कृष्ण औतारा । अरु कौरौ पाँडव तन धारा ॥
सत्य कबीर कृष्णसंवादा । ज्ञानगुष्टि तहँ बहु कथि बादा ॥
कृष्णहि बहु विधि ज्ञान दृढाई । क्षर अक्षरके पार लखाई ॥
सत्य कबीर ज्ञान गंभीरा । कथे सकल सुर नर मुनितीरा ॥
ताही समय युधिष्ठिर राजा । ताने कीन यज्ञको साजा ॥
बंधु मारि अपकीरति कीना । ताते यज्ञ रचन चित दीना ॥
कृष्णकेरि जब आज्ञा पाई । तब पांडौ सब साज मँगाई ॥
यज्ञ कि सामिग्री गहि सारी । जहँ तहँते सब साधु हँकारी ॥
पांडौ प्रति बोले यदुपाला । पूरन यज्ञ जान तिहि काला ॥
घंट अकास बजत सुनि आवो । यज्ञको तब पूरन फल पावो ॥
जुरे तहाँ कोटिन ऋषि राजा । साधू ब्राह्मण सहित समाजा ॥
भोजन विविध प्रकार बनाई । परम प्रीतिसे सबहि जेंवाई ॥
भोजन कीन सकल ऋषिराई । बजा न घंट भूप भ्रम आई ॥
पांडौ तबहि कृष्णपहँ गयऊ । मन संशय करि पूछत भयऊ ॥
करिके कृपा कहो यदुराजा । कारन कौन घंट नहिं बाजा ॥
सो अस कारण तासु बताई । साधू नहिं कोइ भोजन पाई ॥
चकृत ह्वै तब पांडौ कहेऊ । कोटिन साधू भोजन लहेऊ ॥

अब कहँ साधु पाइये नाथा । तब तिनते बोले यदुनाथा ॥
श्वपच सुदर्शनको ले आवो । आदर मान समेत जेंवावो ॥
सोई साधु और नहिं कोई । पूरन यज्ञ जाहिते होई ॥
कृष्णकी जब अस आज्ञा पाई । तब पांडौ ताके ढिग जाई ॥
श्वपच सुदर्शनको ले आई । बिनय प्रीतिसे ताहि जेंवाई ॥
भूप भौन भोजन कर जबही । बजा अकाशमें घंटा तबही ॥
काल कछुक जब गयौ सिराई । तब देहांत श्वपचको आई ॥
तन तजके तब सो चलि जाई । सतगुरु तिहि निजलोक पठाई ॥
ताही समय कृष्ण तज देही । बोधरूप धारचो तब येही ॥
नाम जो इन्द्रदौन तेहि काला । देश उडैसेको महिपाला ॥
तन तजि कृष्ण तहां चलि जाई । इन्द्रदौन कहँ स्वप्न देखाई ॥
स्वप्नमें अस हरि ताहि बताई । मेरो मंदिर देहु उठाई ॥
भूपतिसे जब ऐसे कहेऊ । सो मंदिरकी रचना गहेऊ ॥
रामचंद्र गहि निज दल भीरा । गये जबहिं वारिधिके तीरा ॥
बांध्यौ सेत बंध बरियाई । तेहि कारन सागर दुख पाई ॥
जो बलवान अबल दुख देई । बदला अवशि भरैंगे तेई ॥
नीति निरंजनकी यह जाना । स्वसमवेदमें प्रथम बखाना ॥
बदला पूर्व लेन तिहि बारा । छोभित सिन्धु उठा खरधारा ॥
जब रचि मंदिर लाग उठावा । क्रोधवंत सागर तब धावा ॥
छनमें धाय सकल सो बोरे । जगन्नाथको मंदिर तोरे ॥
हारा नृप करि जतन उपाई । हरि मंदिर तहँ उठै न पाई ॥

सत्यकबीर वचन--चौपाई

मंदिरकी यह दशा बिचारी । बर पूरब मनमाहँ सँभारी ॥
तब हम चले उड़ैसे माहीं । इन्द्रदौन भूपतिके पाहीं ॥
मन्दिर षट परकार बनाई । उदधि नीर तेहि लीन बुडाई ॥
पीछे उदधि तीर हम जाई । जायके चौरा तहाँ बनाई ॥

इन्द्रदौनकहँ वचन सुनावो। अहो राव तुम काम लगावो ॥
मण्डप शंक न राखो राजा। इहवाँ हम आये यहि काजा ॥
जाहु बेगि जनि लावहु बारा। निश्चय मानो वचन हमारा ॥
राजा मण्डप काम लगाई। मण्डप देखि उदधि तब धाई ॥
सागर लहरि उठै बिकरारा। आवै लहरि क्रोध चित धारा ॥
उदधि उमङ्ग क्रोध अति आई। लहरि आनि चौरा नियराई ॥
दरस हमार उदधि तब पाई। अतिभय मान रहा ठहराई ॥

समुद्र वचन

छन्द–रूप धार्‌यो विप्रको तब उदधि हमपै आइया।
चरन गहिके माथ नायो मरम हम नहिं पाइया ॥
जगन्नाथके भोर स्वामी ताने हम इत आइया।
अपराध मेरो क्षमा कीजै मरम अब हमपाइया ॥

सोरठा–तुम प्रभु दीन दयाल, रघुपति ओल दिवाइये।
वचन करो प्रतिपाल, कर जोरे बिनती करों ॥

चौपाई

कीनो गौन लंक रघुवीरा। उदधि बांधि उतरे रन धीरा ॥
जो कोइ करे जोर बरियाई। अलखरूप तिहि ओल दिवाई॥
मोपर दया करो तुम स्वामी। लेव ओल उर अंतर्यामी ॥

कबीर वचन–चौपाई

ओल तुमार उदधि हम चीन्हा। बोरे नग्र द्वारिका दीना ॥

उदधि वचन

यह सुनि उदधि धरचो तब पाई। चरन टेकि तब चल हरषाई ॥
उदधि लहरि उमँगी तब धाई। बोरचो नग्र द्वारिका जाई ॥
मंदिर काम पूर तब भयऊ। हरिको थापन तहवाँ कियऊ ॥

कृष्ण वचन–चौपाई

तब पंडन हरि स्वप्न जनायो। सत्य कबीर मोहिंपै आयो ॥

आसन सागर तीर बनाई । दरस कबीर उदधि उठि जाई॥
यहि विधि मंदिर मोर थपाई । कलियुगमें एक धाम बसाई ॥

पंडा वचन--चौपाई

पंडा उदधि तीर तब जाई । करि असनान मंडपहि जाई ॥
पंडा मन अस पाखण्ड लाई । प्रथमहि दरस मलेच्छ देखाई॥
हरिको दरसन हम नहिं पाई । पहिले हम चौरा गनि आई ॥
तब हम कौतुक एक बनाई । पूजन मंडप पंडा जाई ॥
तहवाँ एक चरित्र रहाई । लखि पंडा चकृत ह्वै जाई ॥
जहँ लगि सूरत मंदिर माहीं । भये कबीर रूप धरि ताहीं ॥
हरि मूरति कहँ पंडा देखा । भये कबीर रूप धरि भेखा ॥
अछत पुष्प लै विप्र भुलाई । नहिं ठाकुरको पूजन पाई ॥
देखि चरित्र विप्र शिर नावा । हम स्वामी तुम मर्म न पावा॥
तुमकहँ देखि हीन मन लाई । ताते मोहि चरित्र देखाई ॥
छमा अपराध करो प्रभु मोरे । बिनती करौं दोउ कर जोरे ॥

छन्द—बचन एक मैं कह्यौं ताते विप्र सुन तैं कान दे ।
पूज ठाकुर दीन आयसु दुबिधा मनकी छाड़ दे ॥
भ्रांति भोजन करे जो जिव आगहीनो तासुको ।
करे भोजन छूति राखे शीश उलटै जासुको ॥

चौपाई

पंडौ मनमें मान्यौ हीना । ताते यह चरित्र गुरु कीना ॥
जगन्नाथकी छूति उठाई । बर्न विवेक न तहाँ रहाई ॥
सबहि जाति हरि भोग लगावैं । यकठे बैठके भोजन पावैं ॥
कछु नहिं छूति रही तिहि ठामा । सर्वजाति यकमय हरिधामा ॥
आचारिनि बहु कीन विचारा । जगन्नाथ है चलै अचारा ॥
तिनको तहँ आचार न चाले । सत्य कबीर वचन को टाले ॥

इमि गुरु हरि मंदिर थपवाई । पूरब कथा बहुरि अब आई ॥
श्वपच सुदर्शन तन तजि गयऊ । लोकजाय गुरु बिनती कियऊ ॥
हे सतगुरु अस दाया कीजै । मेरे मातु पिता गति दीजै ॥
श्वपचके मातु पिता जो रहेऊ । पूर्वदेह गुरु ज्ञान न कहेऊ ॥
ताते बहुरि देह सो धारी । द्विजकुलमें प्रकटे नर नारी ॥
पुत्रकि भक्ति प्रतापते सोई । श्वपच देह तजिके द्विज होई ॥
कुलपति नाम पिताको रहेऊ । श्रिया नाम माताको कहेऊ ॥
चन्दवार तेहि नग्रको नाँऊ । नारी पुरुष बसैं तेहि ठाँऊ ॥
जब दोनों द्विज कुल तन पाई । नरहरि लछमना नाम धराई ॥
जगन्नाथ के योग पग धारे । सत्य कबीर चले चँदवारे ॥
दोऊ जीव तारनके काजा । चंदवार गुरु आनि बिराजा ॥

सत्यकबीर वचन--चौपाई

जगन्नाथसे जब पग धारे । तबहि आनि पहुँचे चँदवारे ॥
बालक रूप धर्‌यो तिहि ठामा । कीनेहु तालमाहिं विश्रामा ॥
कमल पत्र पर आसन लाई । आठ पहर हम तहाँ रहाई ॥
नरहरि नारि लछमना जोई । तालके ऊपर पहुँची सोई ॥
पुत्र हेत सों आस लगाई । करि असनान बिनय रविराई ॥
अञ्चल ले बिनवै कर जोरी । सुन्दर पुत्रहेत चित दौरी ॥
ततछन हम अंचल पर आवा । हमकहँ देखि नारि हरषावा ॥
बालरूप ह्वै भेंट्यो ओही । विप्र नारि यह ले गई मोही ॥
बहुत द्यौस तिहि संग रहाऊ । नारि पुरुष मिलि सेवा लाऊ ॥
जब हम उठै पलँग झटकोरा । सुवरन मिलै तिन्हें यक तोरा ॥
तिनके हृदय न शब्द समाई । बालक जानि प्रतीत न आई ॥
ताहि देह नहिं चीन्हो मोही । भयो गुप्त तबही तन ओही ॥
नरतिय जब दोनों तन त्यागे । जन्म लीन जोलहा ह्वै जागे ॥

नीरू नीमा जोलह जोलाही । काशी नग्र बसैं दोउ ताही ॥
ताही नग्र कबीर तलाई । कमल पुष्प तामें रह छाई ॥
बालक रूप तहाँ हम लीने । कमल पुष्प पर आसन कीने ॥
तहँ बारह बालक पौढाऊ । करे कुतूहल बाल सुभाऊ ॥
तिहि औसरमें नीरू जोलाहा । नारि गौन सँग ल्यावे ताहा ॥
तृषावंत जब भै सो नारी । तालपै जल अँचवन पग धारी॥
नीमा दृष्टि बाल पर परेऊ । देखत दरश मोद मन भरेऊ ॥
जिमि रवि दरश पद्म विकशाना । धाय धरयो धन रंक समाना ॥
तब सो बालक लियौ उठाई । ले बालक नीरूपहँ आई ॥
क्रोधवन्त जोलहा तब भैऊ । नीमासे तब ऐसे कहेऊ ॥
काको बालक तैं लै आई । नग्रमें मेरी होय हँसाई ॥
नग्रके लोग हँसैंगे मोही । गौनहि तिय बालक सँग जोही॥
जोलहा रोष कीन तिहि बारी । बेगि देहु तुम बालक डारी ॥
हर्ष शुना वनि नारी लाई । तब हम तासे बचन सुनाई ॥

बाल बचन

छन्द--सुनहु बचन हमार नीमा तोहि कहों समुझायके ।
पिछली प्रीतिके कारने तोहि दरस दीनो आयके ॥
आपने गृह लै चलो मोहि चीन्हिके जौं गुरु करो ।
देहुँ नाम दृढ़ाय तुमको फंद यमके नहि परो ॥

सोरठा--सुनत बचन अस नारि, नीरू त्रास न राखेऊ ।
ले गई नग्र मझार, काशी नगर पहूँचेऊ ॥

चौपाई

लै बालक जब घरको गैऊ । नग्र लोग सब देखत भैऊ ॥
नग्र नारि नर हाँसी लाई । नारि गौन सँग बालक ल्याई ॥
जोलहा सुनि सुनि लाजित होई । बाल वृतांत कहै सब सोई ॥

यह बालक तलावमें पाई । नीमा देखि ताहि लै आई ॥
कमलपुष्प शिशु सेज बनाई । हरषित नारि सो लियौ उठाई ॥
जोलहा यद्यपि कथा प्रकासी । तऊ लोग सब करते हाँसी ॥
बहुत द्यौस तिहि भौन रहाऊ । जोलहा जाने बालक भाऊ ॥
बालक रूप तासु ग्रह रहते । खानपान तहँ नहिं कछु गहते ॥
बिन भोजन तन छबि सरसाई । दिन दिन देहकी दीरघताई ॥
जोलहा पुनि पंडितन बोलाये । बालक नाम धरनको आये ॥
पंडित करन जो लगे बिचारा । तब शिशु निजमुख बचन उचारा ॥
नाम कबीर हमारा अहई । और नाम जनि पंडित कहई ॥
यह सुनिके सब चकृत भैऊ । शिशु निजुनाम आपते कहेऊ ॥
कोइ कहै यह दानौ देवा । कोई कहै यह अलख अभेवा ॥
कोई ईश्वर अंश बतावा । कोइ कह आप देह धरि आवा ॥
पंडित निज निज भौन सिधारा । बिन भोजन बीते बहु बारा ॥
जोलहा तब मनमें दुख पाई । भोजन करो कबीर गोसांई ॥
जोलह जोलाही दुखित निहारी । तब हम तिनते बचन उचारी ॥
कोरी यक बछिया ले आवो । कोरा भांडा एक मँगावो ॥
ततछन सो जोलहा चलि जाई । गऊ कि बछिया कोरी ल्याई ॥
कोरा भांडा एक गहाई । भांडा बछिया शीघ्रही आई ॥
दोऊ कबीरके सम्मुख आना । बछिया दिशादृष्टि निज ताना ॥
बछिया हेठ सो भांडा धरेऊ । ताके थनहि दूधते भरेऊ ॥
दूध हमारे आगे धरही । यहिविधि खानपान नित करही ॥
तबसे जोलहा डरै बहूता । हमरे घर है अचरज पूता ॥
केते दिन यहि विधि चलिगेऊ । संग बालकन खेलत भेऊ ॥
कथै बालकन प्रति विज्ञाना । सो जड़वत नहिं कछु पहिचाना ॥
तब साधुन सँग गोष्ठि कराही । अगम ज्ञान कथ तिनके पाही ॥

सुनि साधुन मन अचरज होई। यह तो सिद्ध पुरुष है कोई॥
सब जोलहा मिलके यक बारा। नीरू ते अस बचन उचारा॥
बालककी सुन्नत करवावो। तिहि कारन सब साज मँगावो॥
ताहि काल अस कथा कहाई। नाई सुन्नतको बोलवाई॥
तब नाई कबीर ढिग आया। ले अस्तुरा निकट नियराया॥
पांच इंद्री ताको दिखलावो। काटि लेहु जो तोहि मनभावो॥
यह लखि भभरिके नाई भागा। सुन्नत नहीं कीन डर लागा॥
पुनि जोलहन अस कौतुक कीना। तब बोलाय काजीको लीना॥
एक गाय तिहि काल मँगाई। काजी ताको जबह कराई॥
जिहि औसर अस कौतुक ठाना। सत्यकबीर मरम सब जाना॥
खेलत रहे बालकन माहीं। तेहि छन धायके पहुँचे ताहीं॥
गऊ घात जब देखत भैऊ। दया धारि काजीते कहेऊ॥
बहुबिधि काजीको समुझाई। महापाप जिव घात बताई॥
काजी लज्जित ह्वै शिर नायौ। बिनती करै न उत्तर आयौ॥
तबहि कबीर गऊ ढिग जाई। मरी गाय तिहि काल जिवाई॥
तब जोलहा गृह तजे कबीरा। अब नहिं रहौं तुमारे तीरा॥
बिकल भये तब नीमा नीरू। नग्र चहूँ दिश बालक हेरू॥
ढूँढत सुत न लह्यौ नर नारी। रुदन बिलाप करैं दोउ भारी॥
विकल विलोकि दया उर आई। तब कबीर तेहि दियो देखाई॥
नीरू नीमा बिनती करही। प्रभु हमरे गृह पुनि पग धरही॥
तब हम तिनते बचन उचारी। ऐसो पाप कीन तुम भारी॥
तब जोलहा बोलै शिर नाई। नहिं यह पाप मेरी समताई॥
मिल जोलहन कीनी बरियाई। ताकी खबर न मैं कछु पाई॥
तापर कृपा बहुरिकै कीना। पुनि ताके गृहमें पग दीना॥
बाल चरित्र है विविधि विधाना। सो संकेत न होय बखाना॥

चरचा जग अनेक परचारा । कछुक सो लिखौं होय विस्तारा ॥
रामानंद गुरू जिमि गहेऊ । वेद मते प्रथमै सो कहेऊ ॥
केते द्योस जोलहा गृह बासा । अजौं न ता हिय ज्ञान प्रकासा ॥
बार बार तेहि नाम दृढ़ाई । तिनको नहिं प्रतीत गुरु आई ॥
बालक जानि न गुरुपद गहेऊ । ताते परमधाम नहिं लहेऊ ॥
जोलहाकी जब आयु पुराई । मथुरा नग्र देह घर जाई ॥
सकल कथा मैं कीन प्रकाशा । जिमि गुरुकर जोलहा गृहवासा ॥
श्वपचके मातु पिता जो रहेऊ । श्रीपा कुलपति नाम सो कहेऊ ॥
बहुरि लछमना नरहर सोई । नीमा नीरू सोई होई ॥
तिन दुहुँके तारणके काजा । जोलहा गुरु गृह आनि बिराजा ॥
गर्भवास कबहुँ नहिं आवै । निज इच्छा नर तन दरसावै ॥
हिंदू मुसलमान नहिं सोई । बाल बृद्ध अरु युवा न होई ॥
दाया करै देह नर धरही । जीव अनंत कोटि ले तरही ॥
जरा मरण कबहूँ नहिं ताही । सदा समान एकरस आही ॥
सो वृतांत अब करो बखाना । जिमि कबीर काशी कथ ज्ञाना ॥
षट दरसन झगरनको आवै । अगम ज्ञान सबको समुझावै ॥
सत्यपथको कीन प्रचारा । हिंसा कर्म निंद निरधारा ॥
तीरथ व्रत अरु मूरति पूजा । जीव हनै ईश्वर कथ दूजा ॥
जीवघात करिहै जो कोई । वासा तासु नरकमें होई ॥
पाहन को पूजै पाखंडी । गल काटै जो सम्मुख चंडी ॥
बकरा मुरगा जबह जो करही । बिस्मिल्लह कहि धर्म उचरही ॥
सो सब पापकर्म बतलाये । हिंदू तुर्क सुनत दुख पाये ॥
वैरभाव दोनों कुल धरहीं । सत्यकबीर टेक नहिं टरहीं ॥
मिलि विप्रन अस युक्ति बनाई । किमि कबीरकी हुरमत जाई ॥
ऐसी गोष्ठि सबन मिलि ठाना । करि प्रपंच अस कीन बहाना ॥

जहाँ तहाँ बहु विप्र सिधारा । सत्यकबीर केर भंडारा ॥
निवता दियो चहूँ दिश जाई । साधुनकी जमाति चलिआई ॥
भीर भई साधुनकी भारी । गृह तजि सत्यकबीर सिधारी ॥
आयके विष्णु भये भंडारी । साधुनको आदर कर भारी ॥
पोषन भरना विष्णुको कर्मा । आयके गहि लीनों निजधर्मा ॥
सत्य कबीर कर्मते न्यारा । मायाको सब खेल पसारा ॥
माया सदा जासुकी दासी । सकै कौन करि ताकी हाँसी ॥
सब साधुनको हरि सनमाने । विप्र सकल देखत खिसियाने ॥
मर्म न कोई लख्यो तिहि बारा । धन्य कबीर धन्य भंडारा ॥

दोहा–काशी कुटी कबीरपर, भई साधुनकी भीर ।
जो कछु किया सो हरि किया, होय कबीर कबीर ॥

चौपाई

आदर भोजन दछिना पाई । धन्य धन्य कहि साधु सिधाई॥
काजी पंडित करें बिचारा । जाय कबीर कौन विधि मारा ॥
काशीमें तेहि काल बताई । शाह सिकन्दर पहुँचा आई ॥

इति

ग्रंथनिरंभयज्ञान--सत्यकबीर वचन

साखी–कलिमहँ काशी प्रकट्यौ, सुनो सन्त धर्मदास ।
सत्य पंथ परचारेऊ, निंदक भये उदास ॥
शाह शिकंदरके तन, भयो ज्वाल उतपान ।
दुखव्याकुल अति विकलतन, काशी पहुँचा आन ॥

चौपाई

पूछै शाह ऐसा कोइ भाई । जाते मेरो कष्ट दुराई ॥

साखी–काजी पंडित मिलिके, कहा शाहसे जाय ।
है कबीर दरवेश यक, ताको लेहु बुलाय ॥

चौपाई

कहैं शाह तेहि तुरत ले आवो । साइत एक विलंब न लावो ॥

साखी-आये धायके लोग बहु, आतुर बोले बैन ।
चलो कबीरा शाहपै, हम आये तोहिं लैन ॥

चौपाई

गये शाहके सन्मुख जबही । ज्वाला देह दूर भइ तबही ॥
उठिके शाह भयो तब ठाढा । मोहिते अधिक प्रेम तब बाढा ॥

साखी-शाह न छोडे हमकहँ, बढ्यो प्रेम मनमाहिं ।
शेखतकी तेहि पीर थे, सो मुरझे मनमाहिं ॥

चौपाई

कहैं तकी सुन शाह सिकंदर । हमते कियो तफाउत अंतर ॥
जोलहाते तुम कीनेहु यारी । हमते अन्तर कियो विगारी ॥
कह सिकंदर तुम हमरे पीरा । वह द्रदमंद द्रवेश फकीरा ॥
कहैं मारफत राहकी बाते । राखा जान जो मेरा जाते ॥
ऐसे शाह कह्यो समुझाई । तबहुँ न शेखतकी शरमाई ॥
काशीके पंडित अरु काजी । शेखतकी मिली परपँच साजी ॥
कह काजी सुनु शाहके पीरा । कैसेहु मारा जाय कबीरा ॥
यह जोलहा जौं मारा जाई । तौ हम सबकी टरै बलाई ॥
कहै तकी सुन पंडित काजी । क्या कबीर जोलहा है पाजी ॥
चाहो तो आतशमें जारो । चाहो टूक टूक करि डारो ॥
चाहो जलके बीच डुबाओ । चाहो देगमें आँच दिलावो ॥
चाहो हाथीसे चिरवाओ । चाहो खाक त्वचा भरवावो ॥
चाहो तो देवालमें साटो । चाहो बोटी बोटी काटो ॥
चाहो मोहडे तोप उडावो । चाहो कूपमें जिअत दबाओ ॥

साखी-मेरा नाम शेख तकी, मैं सिकंदरको पीर ।
देखो कैसे बाचिहै, कैसा फकर कबीर ॥

काजी पंडित सब हरषाना । जिमि पंकज विकसे लखि भाना ॥
कह काजी तुमते सब होई । तुम ऐसा दूजा नहिं कोई ॥
इस जोलहेने कुफुर मचाया । दोनों दीनकी अदल मिटाया ॥

साखी–तीरथ व्रत एकादशी, रोजा और नमाज ।
ये सब कछू न मानई, कहै एक शिरताज ॥
खसी वो मुरगी गायनी, पीर निमित हम देह ।
सबको कहै कसाइ है, ऐसा काफिर येह ॥

चौपाई

काशीके लोग हमैं नहिं मानैं । जोलहाकी सब सिफत बखानैं ॥

साखी–भाग हमारे शेखजी, तुम इहँ पहुँचे आय ।
जौं यह जोलहा मारहू, सबको कंटक जाय ॥
कहै तकी सुन काजी, हमते बाढी रार ।
जीअत कबहुं छोडो, न अब यहि डारो मार ॥
शेखतकी परपंच करि, गये शाहके पाहँ ।
हमें देख तहँ बैठे, अधिक जरे मनमाहँ ॥
कहै तकी चित रोष धरि, सुनो सिकन्दर बात ।
कहा हमारा मानहू, तब होवै कुशलात ॥

सोरठा–यहि जोलहै तू मार, नहीं तो देगा बददुआ ।
तुमको करों खुवार, जान माल सब गलैगा ॥

साखी–कहै सिकन्दर पीर सुन, मोहि तुमारि पनाह ।
जो चाहो सो करो यहि, तुमें कोइ रोकै नाह ॥

चौपाई

कहो कबीरके मारन ताँई । इहवाँ मेरी कछु न बसाई ॥
पीर फकीर जात अल्लाहा । मेरो जोर न पहुँचे ताहा ॥

साखी–जौं वह होतो रैअत, तौ हम करते जोर ।
वह अलमस्त फकीर है, तहाँ न फाबै मोर ॥
तुमहु कही समुझायके, पीर फकीर अल्लाह ।
अब तुम कहते मारने, यह न होय हमपाह ॥

चौपाई

अहो पीरजी तुम वह एका । अपने मनमें करो विवेका ॥
उन तुमरो कछु नाहिं बिगारा । काहे तुमने कुफुर पसारा ॥
बुजरुग सब नेकी फरमावै । जोर जुलुम कछु नाहीं भावै ॥
साखी–कहा हमारा मानिये, छोडि दीजिये रार ।
कुलह सुलह दे बैठिये, अल्लह ओर निहार ॥
कहै तकी सुलतान सुन, तुमे नहीं कछु दोष ।
जो मैं कहों सो मानिये, कर मेरो संतोष ॥
कहै सिकंदर पीर सुन, मेरो शिर बरु लेहु ।
फकिर कबीर न मारिये, यह मांगे मोहि देहु ॥

चौपाई

सुनतहि तकी क्रोध परजारा । शिरते ताज जमीन दे मारा ॥
निपटहि बिकल देखि तिहि भाई । तब हम शाहसे कहा बुझाई ॥
कहै कबीर सुनो सुलताना । करो पीरको बचन प्रमाना ॥
कहै सिकंदर सुनो हो पीरा । मन मानै सो करो कबीरा ॥
साखी–डारहु मारि कबीरको, हम नहिं मानैं ऊन ।
ताका कबहु न भला हो, करे फकरको खून ॥

चौपाई

शेखतकी तब उठे रिसाई । है कोई बांध कबीरहि भाई ॥
साखी–शेखतकी आपै उठै, काजी पंडित झार ।
बाँध बाँध सब कोई कहै, कोई न करे गोहार ॥

बाहँ बांधि पग बांधिके, बोर गंगजल नीर।
निःसंशय निश्चित सो, निरभय सदा कबीर॥
गंगाजलपर आसन, वंद परे खहराय।
जन कबीर सतनाम बल, निरभय मंगल गाय॥
शाह सिकंदर देखही, अरु ठाढे सब लोग।
धनि कबीर सब कोइ कहै, शेखतकी भा सोग॥

चौपाई

शेखतकी तब मींजै हाथा। सूखे मुख नहिं आवै बाता॥
शेखतकी तब कहै बनाई। अबकी कसनी बदौ न भाई॥
अबकी बार कबीरहि पावो। देगि मूंदिके आच दिलावो॥
देग आंचते बचै कबीरा। तौ जानौ अल्लाहको नूरा॥
कहै कबीर नाम परकासा। तासो गयौ सिकंदरके पासा॥
शाह सिकंदर उठिभे ठाढे। अधिको प्रेम तासु उर बाढे॥
शेखतकी कह क्रोधित बैना। धुनै शीस राते भये नैना॥
सुन कबीर कह तकी मयाना। तुम कीनो चेटक हम जाना॥

साखी–अबहि तोहि कीमा करे, देग मूँदि देव आँच।
देव आँचदे बाँचिहो, तो कबीर तुम साँच॥
कहै कबीर सुन शेखतकि, करो जो तुम मनभाव।
हम जैसेको तैसा, देग आँच दिलवाव॥

चौपाई

तुम नाटक चेटक मन लावा। हमरे चेटक नाम प्रभावा॥
शेखतकी तुम आप हो जैसो। हमको तुम मति जानो तैसो॥

साखी–कीमा करने कारने, शेख घालो तरवार।
खांड़ा गहि शिर ना कटै, शेखतकी गे हार॥
कहै तकी इहि जोलहा, बांध्यो खांड़ा मोर।

तातै देही ना कटै, लगै अन्न हो भोर ॥
देग मुसल्लम मूँदेहू, मोहड़ा मूँद रिसाय ।
आप आँच दिलवावई, ठाढ़ कतहुँ नहिं जाय ॥

चौपाई

देख लोग सब बहुत तमासा । हम पुनि गये सिकन्दर पासा ॥
साखी–शाह सिकन्दर पीरपै, खबरि पठाई साँच ।
है कबीर पास हमारे, काहि दिलावो आँच ॥

चौपाई

सो सुनि तकी देग मुख खोला । सुन्न देखि वाको मन डोला ॥
आतुर तकी शाहपै आये । हमैं देखि पुनि शीश डोलाये ॥
बहुरि तकी लज्जित है कहई । जोलहापै कछु चेटक अहई ॥
साखी–देग अन्न जल बांचेऊ, नहिं व्यापै तन पीर ।
बहुरि अग्नि जरि बाचिहौ,तो तुम साँच कबीर॥

चौपाई

विहँसि कबीर कहैं सुन शेखा । करो जो आवै तुमरे लेखा ॥
शेखतकी बहु काठ मँगाया । अति विस्तार अँबार लगाया॥
साखी–ताहि बीच मोहिं मूँदके, दीन्हेसि अग्नि लगाय ।
अग्नी धाय बुतानी, जन कबीर गुन गाय ॥

चौपाई

कहै तकी यह बाँध्यौ आगी । याको चेटक सब पर लागी ॥
तब जानो तुम सांच फकीरा । धरती गाड़े बचे कबीरा ॥
कहैं कबीर सत नाम प्रतापा । कतहूँ नहिं व्यापै तनतापा ॥
साखी–तुम मति चूको शेखजी, करो जो तुव मन होय ।
कहैं कबीर मोहि डर नहीं, निर्भय नाम समोय ॥

चौपाई

शेखतकी पुनि कूप खुदाये । गर पग बांधि ताहिमें नाये ॥

साखी-ईंटा पाथरते भरे, दीनो कूप मुँदाय ।
कहै तकी अबकी मरे, ऐसो करे खुदाय ॥

चौपाई

शेखतकी अल्लाह मनावै । अबकी बार न जीअत आवै ॥
हम पुनि गये शाहके पासा । तबहि सिकन्दर वचन प्रकासा॥
साखी-कहै सिकन्दर पीर सुन, किसको गाड़ो कूप ।
सो कबीर इहँ बैठ हैं, अदभुत ख्याल अनूप ॥

चौपाई

शेखतकी व्याकुल है बोले । नैन नासिका मस्तक डोले ॥
साखी-यहि जोलहाके पासमें, तारो गुटका आहि ।
ताते गाड़े नहिं मड़े, जरै न काटा जाय ॥
अब गहि कर पग बांधिके, हाथी देव हुलाय ।
हाथी धरि धरि चीरि है, तब कछु नाहिं बसाय॥
खूनी पील मँगायकै, दीन्हेसि मद्य पिलाय ।
कर पग बँधि हाथी हुले, हाथी चला पराय ॥
केतनो करै महाउत, गज सम्मुख नहिं आव ।
कहै तकी अब तोपके, मोहड़े राखि उड़ाव ॥
गोला दारू भरि दिहसि, राखे मोहडे तोप ।
कहैं कबीर सतनाम बल, निर्भय रह्यो निशोक॥
चले सिकन्दर निज घरे, हमकहँ लीने साथ ।
शेखतकी झूँसी रहे, शाह इलाहाबाद ॥

चौपाई

काशीके ब्रह्मन अरु काजी । मुरछि रहे सब हिरफत बाजी ॥
साखी-एक द्यौस गंगा तटे, बैठ सिकन्दर शाह ।
शेखतकी हमहू तहाँ, मुरदा यक बहा जाय ॥

चौपाई

कहै तकी सुन फकर कबीरा । मुरदा फेर जिलावहु धीरा ॥

साखी–कहै कबीर गरीब हम, तुम बादशाहके पीर ।
मुरदा तुमहि जिलावहू, सतगुरु कहै कबीर ॥

चौपाई

शेखतकी चितवै चित लाई । अल्लह मुरदा देहु जिलाई ॥

साखी–अल्लह पीर मनाइया, शेखतकी बहु बार ।
मुरदा जिंदा न हुवा, बहिगो रेत मझार ॥

चौपाई

शेखतकी कह सुनो कबीरा । मुरदा तुमहिं जिलावहु फीरा ॥

साखी–उठि मुरदहि हम चितवा, दूरते नेरे आय ।
कुदरत निर्भय नामके, मुरदा फेर जिलाय ॥
मुरदेको अस बोलेऊ, उठ कुदरत कम्माल ।
कर कुबड़ी धर टेकिऊ, सजि जिव भया सो बाल॥

चौपाई

सुत कमाल कहि उत्तर दीना । उठि कमाल तब अस्तुति कीना॥
गुरू सत्त जो कही कमाला । गुरु कबीर मोहि कीन निहाला ॥

साखी–कहै कमाल पुकारिके, गुरु हैं सत्य कबीर ।
मुरदेसे जिंदा किया, गन्दी गली शरीर ॥
शेखतकी मन मूर्छिके, कह धनि धन्य कबीर ।
तुम अल्लाह खुदाय हो, तुम मेरे गुरु पीर ॥
कहै कबीर सुन शेखजी, तुम औलियाकि जात ।
रोजा निमाज कर बंदगी, बैठो नबी जमात ॥
जो अल्लह फरमाया, सो नहिं करता कोय ।
हलाल हराम चीन्है नहीं, कैसे मुसलिम होय ॥

साखी–जबतक दर्द पराई, दिलमें आवै नाहिं ।
कोटि बंदगी खता है, परै सो दोजखमाहिं ॥
जैसा दिल है आपना, तैसा सबका जान ।
दर्दमन्द अल्लह मिलै, कहै कबीर प्रमान ॥
शाह सिकंदर तकी मिलि, ठाढ़ भये करजोर ।
बकसो चूक कबीर तुम, जो कछु औगुन मोर ॥

चौपाई

कहै कबीर सुनो शाह प्यारे । तुम हमार कछु नाहिं बिगारे ॥
तुमरे पीर जो कसनी लीना । खरा खोट हम सबही चीन्हा ॥
हम नहिं देहिं बद्दुवा काहू । जो मम अरि हम सेवत वाहू ॥
हमरे मित्र दुष्ट कोइ नाहीं । सब हमरेमें हम सबमाहीं ॥
हम काहूको कहा सरापैं । करैं सो तैसो फल ले आपैं ॥

साखी–जैसो बीज कोइ बोइहै, तस फल चाखै आप ।
कह कबीर सत कहत हौं, मोहिं पुण्य नहिं पाप ॥
कहर कुफुर दिल दोजखी, मोम दिलमें हर फकीर ।
निरभय नामसो समरथ, सतगुरु कहैं कबीर ॥

चौपाई

ऐसे कहि काशी चलि आये । धर्मदास तोहि सैन बुझाये ॥

सत्यकबीर वचन–चौपाई

रोग सोग बहु दुःख हटाये । केते परचाको देखलाये ॥
मृत्तकको दीनो जिव दाना । सो कछु इहां न करौं बखाना ॥
सोइ प्रसंग बहुरि अब गाई । कलिमें जिमि प्रभु पंथ चलाई ॥
सत्य कबीरके शिष्य सुजाना । चार गुरू जो कीन प्रमाना ॥
तिनमें धर्मदास बड़ अंशा । वंश बयालिस जासु प्रशंसा ॥

धर्मदास धरनीमें आये । करि प्रपंच तिहि काल भ्रमाये ॥
धर्मदास सुकृत औतारा । भूल्यौ पुरुष नाम निज सारा ॥
प्रतिमा पूजामें लपटाई । परमपुरुषकी सुधि बिसराई ॥
तीरथ व्रत आचार अपारा । कर्म उपाह्लाको व्योहारा ॥

पुरुष वचन–चौपाई

पुरुष अवाज उठी तिहि बारा । ज्ञानी वेगि जाहु संसारा ॥
सुकृत भवसागर चलि जाई । काल जालते गये भुलाई ॥
तिनकहँ जाय चेतावहु ज्ञानी । जाते वंश चलै रजधानी ॥
वंश बयालिस अंश हमारा । सुकृत गेह लेहै अवतारा ॥
ज्ञानी वेगि जाहु तुम अंसा । धर्मदास उर मेटहु शंसा ॥

ज्ञानी वचन–चौपाई

चले ज्ञानी तब शीस नवाई । धर्मदास हम तुम लगि आई ॥
पुरुष अवाज कहा तुम पासा । चीन्हो शब्द गहो विश्वासा ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धनि सतगुरु तुम मोहिं चेतावा । काल जालते मोहि बचावा ॥
मैं किंकर तुव दासके दासा । लीन उबारि काटि यम फांसा ॥
मेरे चित अति हर्ष समाना । तुव गुण मोहिं न जात बखाना ॥
भागी जीव शब्द तुम माने । पूरण भागते तुव वर ठाने ॥
मैं अघकर्मी कुटिल कठोरा । रह्यो अचेत भर्म चित भोरा ॥
मोहि आय तुम लीन जगाई । धन्य भाग तुव दरशन पाई ॥
कहिये मोहि जीवके मूला । रविके उदय कमल मन फूला ॥
भवसागर कौनी विधि छूटै । यमबंधन कौनी विधि टूटै ॥
करौं भक्ति कै योग कमावौं । देउँ दान कै तीर्थ नहावौं ॥
करौं यज्ञ कै इंद्री साधौं । बाहर फिरौं कि मनको बांधौं ॥
करौं अचार कि साधन साधौं । बर्त करौं कै हरि अवराधौं ॥

जो तुम कहो सोइ सो करऊं । वचन तुमार हृदयमें धरऊं ॥

सत्यकबीर वचन--चौपाई

सुन धर्मदास मैं सत्य बतावों । भवसागरको दुःख मिटावों ॥
सुन धर्मदास भक्ति पद ऊँचा । इहि सीढी कोइ बिरला पहुँचा॥
योगी योग साधना करई । भवसागर तेऊ नहिं तरई ॥
दान देय सोई फल पावै । भवसागर भुक्तैको आवै ॥
तीर्थ नहाये जो फल होही । सर्व मर्म समझावों तोही ॥
जन्म लेय सुन्द तन पावै । संपति दौरि बहुरि जग आवै॥
ऊँचे घर लेवै औतारा । ब्राह्मण क्षत्रीको व्यौहारा ॥
इंद्री साधन है अति नीका । बिना भक्ति जानो सब फीका॥
इंद्री साधन है तप भारी । तामस तेज क्रोध हंकारी ॥
क्रोध किये गति मुक्ति न पावै । भक्ति महातम हाथ न आवै ॥
बर्त एक भक्तिको पूरा । और बर्त कीजे सब दूरा ॥
और बर्त सब यमकी फाँसी । भक्तीबर्त मिलै अविनाशी ॥
हरि अवराधनकी सुनि बाता । कहो भेद तुम सुनियो ज्ञाता ॥
हरिहर नाम सदा शिव केरा । तातै मिटै न भवको फेरा ॥
बहुत प्रेमते शिवको ध्यावै । रिध अरु सिद्ध द्रव्य बहु पावै॥
जो मन चित निश्चय करि धरई । गिरि कैलास में बासा करई ॥
फिरके काल झपेटै ताही । डारि देय भव चक्कर माही ॥

साखी-शिव साधनकी यह गति, शिव हैं भवके रूप ।
बिन समझे यह जक्त सब, पऱ्यो महा भ्रमकूप ॥

चौपाई

हरिहर नाम विष्णुको भाखा । शुभ अरु अशुभ कर्म द्वै राखा॥
इनमें करे कलोल सदाई । करे भोग जीवन भरमाई ॥
बहुत प्रीतिसे विष्णुहि ध्यावै । सो जिव विष्णुपुरीमें जावै ॥
विष्णुपुरी सो निरभय नाहीं । फिरि के डारि देइ भव माहीं ॥

साखी–हरीहर नाम जो विष्णुको, जाने किय जिव जेर।
चौरासी भरमै सदा, मिटै न भवको फेर॥

चौपाई

हरिहर ब्रह्माको है नाऊँ। रजगुण व्यापि रहा सब ठाऊँ॥
ब्राह्मणको पूजे संसारा। सो जिव होय न भवके पारा॥

साखी–यहि तिनगुनकी भक्तिमें, मति भूलो धमदास।
इनके ऊपर निरगुन, तहाँ योगीको बास॥

चौपाई

निर्गुण धाम निरञ्जन भाई। जिन सगरी उपपत्ति बनाई॥
निर्गुणते मन भया प्रचंडा। ताते बसै सकल ब्रह्मण्डा॥
निर्गुण अंश सकल औतारा। पीर पगंबर सब तन धारा॥
यही निरञ्जनकेर पसारा। तामें अटका सब संसारा॥
धर्मदास तुम भक्त सनेही। इनमें जनि अटकावो देही॥
भक्त अनेक भये जग माहीं। निरभय घर कोइ पावत नाहीं॥
भक्ति करे तब भक्त कहावै। भगतिसे रहित बचनको पावै॥
चौदह लोक बसै भग माहीं। भगसे न्यारा कोई नाहीं॥
सत्य नामकी खबरि न पाई। क्या करि भक्ति करो रे भाई॥
जगमें भक्त दोय भै भारी। ध्रू प्रहलाद सदा अधिकारी॥
ये दोनों जन द्वै व्रत साधा। एकहि एक इष्ट आराधा॥
ध्रुव तौ गृह तजि बाहर गयऊ। नारदको उपदेशी भयऊ॥
छठे मास प्रकटे हरि आई। राज दियो वैकुंठ पठाई॥
साठि हजार वर्ष करि राजू। कुटुँब सहित वैकुंठ विराजू॥
एक द्यौस जब परलय आई। ताहि बासते देय गिराई॥
दुतिय भक्त प्रहलाद कहाई। इंद्रासनको सुख जो पाई॥
स्वरग दोन चौकरी भुक्ती। बन्धनभावते भई न मुक्ती॥

साखी-इंद्रराजको भोगिके, फिर भवसागरमाहिं।
यह सर्गुनकी भक्ति है, निर्भय कबहूँ नाहिं ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

कौन भाँतिसे करिये भक्ती। सतगुरु मोहि बतावो युक्ती ॥
निर्गुन सद्गुण पार लखावो। तीसर न्यारा मोहि लखावो ॥

सत्य कबीर वचन-चौपाई

एक पुरुष है अगम अपारा। सब घट व्यापक सबसे न्यारा ॥
ताको भक्ति करै जो कोई। ताको आवागमन न होई ॥
आदि ब्रह्म नहिं था ओंकारा। निर्गुन रूप नहीं विस्तारा ॥
नहिं तब बीज नहीं अंकूरा। आदि भवानी चन्दन सूरा ॥
पुरुष कहो तो पुरुषो नाहीं। पुरुष भया मायाके माहीं ॥
शब्द कहो तो शब्दो नाहीं। शब्द भया मायाके माहीं ॥
द्वै बिन होय न अधर अवाजा। कहो काहि यह काज अकाजा ॥
नाम कहो तो नाम न ताको। नामराय काल है जाको ॥
है अनाम अक्षरके माहीं। निह अक्षर कोइ जानत नाहीं ॥
धर्मदास तहँ बास हमारा। काल अकाल न पावै पारा ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कह सुनो गोसाँई। इन बातेन बनबेकी नाहीं ॥
संशय किये एक ही ओरा। तुम ही हते कि है कोइ ओरा ॥

सत्य कबीर वचन चौपाई

जौ परतीति होय उर तोरे। भवको मेटि संग रहु मोरे ॥
आदि पुरुष निहअक्षर जानो। देही धरि मैं प्रकट बखानो ॥
मोहि न व्यापो जगकी माया। कहन सुननको है यह काया ॥
देह नहीं अरु दरसै देही। रहौं सदा जहँ पुरुष विदेही ॥
गुप्त रहौं नाहीं लखि पाया। सो मैं जगमें आनि चेताया ॥

चारों युगमें चारों नाऊँ। माया रहित रहौं सब ठाऊँ॥
सबसे कह्यौं पुकारि पुकारी। कोई न मानै नर अरु नारी॥
इनको दोष कछू नहिं भाई। धर्मराय राख्यो बिलमाई॥

धर्मदास वचन-चौपाई

हे स्वामी मैं तुमको चीन्हा। आदि अंतको भेद सब लीन्हा॥
तुम ही वार तुमहि हो पारा। तुमहीते उपजा संसारा॥
समरथ सब गति पाई तोरी। अब सब संशय छूटी मोरी॥
अब यहि भवमें बहुरि न आवों। तुमरे चरणकमल चित लावों॥

सत्य कबीर वचन--चौपाई

कहै कबीर सुनो धर्मदासा। सकल भेद मैं कीन प्रकाशा॥
अब तुम भक्ति करो चित लाई। सेवो साधु तजि मान बड़ाई॥
पहिले कुल मरजादा खोवै। भयते रहित भक्त तब होवै॥
सेवा करो छोड़ि मत दूजा। गुरुकी सेवा गुरुकी पूजा॥
गुरुसे करे कपट चतुराई। सो हंसा भवभ्रममें आई॥
ताते गुरुसे परदा नाहीं। परदा करे रहै भवमाहीं॥
गुरु है मात पिता गुरु सेवा। गुरु सम और नहीं कोइ देवा॥
गुरुसे अन्तर कबहुँ न करिये। सर्वस ले गुरु आगे धरिये॥

साखी-गुरुकी महिमा अगम है, शिव विरंचि नहिं जान।
गुरु सतगुरुको चीन्हिके, पावै पद निरबान॥

धर्मदास वचन

साखी-कर्म भर्म भव भार सब, दिया भारमें झोंक।
सतगुरुके परतापते, मिट गया सबही धोख॥

इति

अथ धर्मदासजीकी कथा--चौपाई

धर्मदासकी कथा बखानो। वैश्यके कुल तनधारि प्रकटानो॥
धर्मबइल्लव परम अचारी। जासु सुजस गावै संसारी॥

धर्मदास गुरु चरनन परेऊ । तनमनधनतृणसम परिहरेऊ ॥
छप्पनकोटिकि संपति सारी । दियौ लुटाय सो रंक भिखारी॥
एकै पुत्र परम प्रिय जाही । तजत बार नहिं लायौ ताही ॥
नारि पुत्र तजि भये उदासी । धर्मधुरंधर गुन गन रासी ॥
तन मन गहे भक्ति सो गाढ़ी । सतगुरुचरनप्रीति अति बाढ़ी॥
परख्यौ ताको भक्ति प्रभावा । तब तेहि सतगुरु बचन सुनावा॥
धर्मदास सुनिये मम बानी । तुमरे गृह प्रकटैगो आनी ॥
दशमें मास लेइ औतारा । हंसन काज देह निजु धारा ॥
सो जीवन को पार लँघावै । वंशकेर कँडिहार कहावै ॥
मेरे बचनते सो तन धारे । बचन चुरामनि नाम पुकारे ॥

धर्मदास वचन--चौपाई

हे प्रभु हम इद्री बस कीना । कैसे अंश जन्म तौ लीना ॥
धर्मदास अस बचन सुनाई । तब सतगुरु तिहि कह्यौ बुझाई॥
पुरुष नाम धर्मन लिखि देहो । ताते अंश जन्म जो लेहो ॥
लखो सैनमें देहुँ लखाई । धर्मदास सुनिये चित लाई ॥
लिखो पान पूरुष सहिदाना । आमिन देहु पान परवाना ॥
धर्मदास आमिनिहि बोलाई । ले सतगुरुके चरन टिकाई ॥
धर्मदास परवाना दीना । आमिन पाय दंडवत कीना ॥
दशयें मास जब पूजी आसा । प्रकटे अंश चुरामनि दासा ॥
सतगुरु बचन ते प्रकटे आई । बचन चुरामनि नाम कहाई ॥
मुक्तामनि पुनि नाम है ताका । जाते चली वंशकी साका ॥

इति

अथ चारों गुरुकी कथा–चौपाई

स्वसमवेद सतगुरु मुख बानी । चौदह कोटि ज्ञानकी खानी ॥
तत्त्व ज्ञान पुनि ताते काढ़ा । चारो वेद कान तिहि ठाढ़ा ॥
ऋग यजु साम अथर्वन चारो । ताते सब जग धर्म प्रचारो ॥

स्वसमवेदको चारो अंगा । ताते भये अनेकन ढंगा ॥
चारो वेद चहूँ गुरु गहेऊ । परमपंथ जाते जिव लहेऊ ॥
चारो गुरुकी कथा बखानो । सुकृत आदि भेद ग्रंथ प्रमानो॥

इति

अथ प्रथमगुरु भवसागरमें उत्तर दिशा गोसांई धर्मदासजी–चौपाई

लोकमें सुकृत अंश कहलाई । भवसागर धर्मदास गोसांई ॥
उत्तर दिशा तासु गुरुवाई । गहि ऋगवेद जो पंथ चलाई॥
जम्बूदीपो भारथ खंडा । प्रकटै गढ़बानौ महि मंडा ॥
सो गह कोट ज्ञानकी बानी । पंथ प्रचार कीन रजधानी ॥
वंश बयालिस ताने पाया । भवसागरमें पंथ चलाया ॥

इति

अथ धर्मदासजीके बयालिस वंशके नाम

दोहा–बचन चुरामनि प्रथम कह, बहुरि सुदर्शन नाम ।
कुलपति नाम प्रमोद गुरु, कौल नाम गुणधाम ॥
नाम अमोल कहाव पुनि, सुरति सनेही जान ।
हक्क नाम साहिब कहो, पाक नाम परधान ॥
प्रकट नाम साहिब बहुरि, धीरज नाम कह फेर ।
उग्र नाम साहेब कहो, उदै नाम पुनि टेर ॥
गीर्ध नाम साहिब तथा, नामप्रकाश कहाय ।
उदित मुकुन्द बखानिये, अर्ध नाम पुनि गाय ॥
ज्ञानी साहिब हंस मनि, सुकृत नाम अर्जनाम ।
पुनि रसनाम रु गंगमनि, परस नाम अभिराम ॥
जागृत नाम अरु भृंगमनी, अकह कंठमणि होय ।
पुनि संतोषमनी कहो, चात्रिक नाम गनोय ॥
आदि नाम नेह नाम है, आदिनाम महानाम ।

पुनि निज नाम बखानिये, साहेबदास गुणग्राम ॥
उदैदास करु नाम पुनि, हगमनि महामनि हंस ।
मुक्तामनि धर्मदासके, विदित बयालिस बंस ॥

अथ बयालिस वंशकी स्थिति वर्णन—चौपाई

बंशबयालिसकी थिति भाखों । सत्य कबीर प्रमान जो राखों ॥
बीस ब्यौस अरु वर्ष पचीसा । सिंहासन थिति येती दीसा ॥
वर्ष पचीस बीस दिन केरी । भोग पूर्ण थित हो जिहि बेरी ॥
गद्दी सौंपे जो अधिकारी । निज इच्छा पर धाम पधारी ॥
जबलों थित करार नहिं पूजे । तबलों राजसिंहासन भूजे ॥
तिनको कबहुँ न मृत्युकी पीरा । अमर कीन तेहि सत्यकबीरा ॥
गद्दीको करार नियरावै । सन्त महंत खबरि तब पावै ॥
सुने सन्त पृथ्वी चहुँ खूटे । दरशन हेत जाय तहँ जूटे ॥
लेहि चलानेको जब बीरा । जग प्रत्यक्ष निरखे तेहि तीरा ॥
यहि विधि आप लोकचलि जाई । सन्त महन्त बिदा तब पाई ॥
हंसन प्रति गद्दी थिति ऐसे । वंश बयालिस भे जे जैसे ॥
संवत पंद्रहसौ अरु बीसा । वंश थाप तेहि समयसे दीसा ॥
जब तेरही पीढी चलि आवै । मुक्तामनि तबही प्रकटावै ॥
धर्म कबीर होय परचारा । जहँतहँ सतगुरु सुयस उजारा ॥

इति

अथ द्वितिये गुरुभवसागरमें दक्षिण दिशा गोसांई चतुर्भुजदासजी—चौपाई

लोकमें अकह अंश परकाशा । महिमें सोई चतुर्भुजदासा ॥
दक्षिणदिशि गुरु ताहि प्रसंशा । ताके हैं सत्ताइस वंशा ॥
यजुरवेद विधि पंथ चलाई । कुशाहर द्वीप माहिं प्रकटाई ॥
नग्र करनाटक तेहि रजधानी । गढ टकसार ज्ञानकी बानी ॥

इति

अथ चतुर्भुजदासजीके सताइस वंशके नाम–चौपाई

प्रथम प्रेम कह दुतिय हुलासा । तीजे अनँद चौथ विश्वासा ॥
पंचम हित्त प्रीति है छठवें । सतवें निरख बिबेक है अठवें ॥
नौवें सत्त छमा दशमें वद । ग्यरहें धीरज बरहें अनहद ॥
तेरहें शील संतोष चौदहें । पंद्रहें सुमति बुद्धि सोरहें ॥
सत्रहवें पुनि भक्ती जाना । उन्निस दया बीसवें जाना ॥
एकिस कृपा विचार बाइसे । एकपन तेइस मोक्ष चौबिसे ॥
पचिसवें मेद छबीसवें मोखा । सताईसवें सुमती चोखा ॥
लोकमें यह सब नाम कहाये । महिमें न्यारे नाम धराये ॥

इति

अथ तृतीये गुरुभवसागरमें गोसाँई बंकेजी पूर्वदिशा–चौपाई

लोकमें जो हं अंश कहाया । भवसागर बंकेजी राया ॥
सोलह वंश तासुके होई । पूरब दिशिमें प्रकटे सोई ॥
प्लक्ष द्वीप दरभंगा नगरे । सामवेद मम भाषे सगरे ॥
सो गहि मूलज्ञानकी बानी । पंथप्रचार आपनो ठानी ॥

इति

अथ राय बंकेजीके सोलह वंशके नाम जो लोकमें प्रसिद्ध हैं–चौपाई

माया प्रथम कूर्म दुसरोई । तीसर अदल अष्ट कह सोई ॥
चौथ निरंजन छत्र मुनि पंचम । छठे आपमुनि पेख मुनिसप्तम॥
अठयेजीत मुनिनौमशीतलमुनि। दशमें भृगुमुनि ग्यरहे कंठमुनि॥
बरहे कलंकमुनि तेरहे गंगमुनि । चौदहे बिहंगमुनि पंद्रहेसोमुनि॥
मुनि सो रहे जलरंग गोसाँई । षोडशवंश केरि गुरुवाई ॥

इति

अथ चौथे गुरुभवसागरमें गोसाँई सहतेजी पश्चिमदिशा–चौपाई

अंश हिरम्मर लोकमें होई । सहतेजी भवसागर सोई ॥

पश्चिम दिशा करें गुरुवाई। वेद अथर्वन ताने पाई॥
शालमल्य जो द्वीप कहाई। मानपुर शहरमें सो प्रकटाई॥
कथे ज्ञान लहि बीजक बानी। सात वंश ताके परमानी॥

इति

अथ सहतेजीके सातवंशके नाम–चौपाई

प्रथमवर्ष पारस कहवाये। दुतिये स्वातिसनेही गाये॥
तीजे भृंगसमीप बखानी। चौथे लहरसिंधु कहि गानी॥
पञ्चम दीपक ज्योति कहाई। पुनि जलभाष षष्ठमें जोई॥
सप्तम मलयागिर कहि टेरा। सात वंश सहतेजी केरा॥
निज निज वंशन युत गुरुवारी। सत्यकबीरको धर्म प्रचारी॥
जक्त जीवको कर उपदेशा। परम धरमको कहे सँदेशा॥
इनते इतर पंथ बहुतेरो। सत्यकबीरकी कृपा घनेरो॥

इति

अथ सत्यकबीरके बारह पंथ वर्णन--चौपाई

बारह पंथके नाम बतावो। प्रथम नरायणदास कहावो॥
जेठ पुत्र धर्मदासके सोई। जागू पंथ दूसरो होई॥
तीजे सुरति गोपाल पुकारा। मूल निरंजन चौथ उचारा॥
पंचम पंथ आहि टकसारी। छठवाँ भागू पंथ पसारी॥
सो बीजक ले ज्ञान सुनाया। सतयेमें सतनामी आया॥
अष्टम पंथ कमाली होई। नौमें राम कबीर कहोई॥
दशमें प्रेम धामकी बानी। ग्यरहें जीवा पंथ बखानी॥
बरहें एक अचारज आयौ। अपनौ नाम कबीर बतायौ॥
बारह पंथ सुयश गुरु गैहैं। सतगुरु कृपा परमपद पैहैं॥

इति

अथ सत्य कबीरके इतरपंथ वर्णन चौपाई

प्रथमें नानक पन्थ बखानो । पानप बहुरि पंथ कहि गानो ॥
दास मलोक पन्थ परचारा । बहुरि गरीबदास विस्तारा ॥
इत उत देशन देशन माहीं । सत्यकबीर पन्थ जहँ ताहीं ॥
जहँतहँ देखो सत्य कबीरा । हिंदू मुसलमान गुरु पीरा ॥
निज इच्छाते सो तन धारे । कालजालते जीव उबारे ॥
कबहुँ योनि संकट नहिं आवै । जीव दया करि सतगुरु ध्यावै ॥
जिन जिन सतगुरुको पहिचाना । सो अवश्य लह पद निर्बाना ॥

शब्द

हम बसैं चामके धाम हमें कोई क्या जाने ॥
पशुपंछी नरनाग जहां लगि सबै चामको साज ।
चामै चामको दाम बटोरै चामरंगको राज ॥
चामै माडै चामै पोवै चामै करै रसोई ।
चामै चामको परसि जिवावै चाम करे सो होई ॥
चामै गावै चाम बजावै चाम करावै नाच ।
चामै चामको भाव बतावै चाम बीच है सांच ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो हम हैं पूरे चमार ।
जो कोई हमको पहिचानै उतरे भवनिधि पार ॥

सो गुरु खोज सो सन्त सुजाना ॥
जो गुरु खोजि अमरघर आवै पावै मूल ठेकाना ।
जिन गुरु गुरू पञ्च निरमाये रच्यौ जमीं असमाना ॥
तिनके कर्म कटे भवबंधन जिन ओहि गुरुको जाना ।
टीका मूल बिन परगट कीनो चौदह कोटि जो ज्ञाना ॥
नहीं बोल भाषामें आवै शब्दसैन सो जाना ।
आशा बन्धते परगट कीनो जो जैसे अनुमाना ॥

सारशब्द दियौ है पुरुषने आप तो गुप्त रहाना ॥
जिहि पारसते पुरुष दृढ़ाने करि चौका बंधाना ।
कहैं कबीर ये अगम गुरू है सही छाप परवाना ॥

दोहा—जेते पंथ कबीरके, भिन्न भिन्न विधि थाप ।
कहुँ चौका अरु आरती, कंठी माला छाप ॥
तिलक रु कंठीमात्र कहुँ, कहुँ शब्दहि निरधार ।
कहुँ आँदू कहुँ भिन्न कछु, सबको तारन हार ॥
कोई त्रिगुणकी भक्तिमय, कोई तिनते न्यार ।
योग युक्ति करि मुक्तिपद, पावत यहि संसार ॥

इति

अथ नारायणदासजीकी कथा—चौपाई

धर्मदाससुत दास नरायन । भिन्न कथा कछु तासु बतायन ॥
न्यारो पंथ आपनो ठाना । बारह पंथमें तासु मिलाना ॥
वंश माह द्वै भेद बखाना । प्रथम नारायणदासहि जाना ॥
वचन चुरामणि दुतिय बताई । वंशकेरि कड़िहारी पाई ॥
दोनों जगमें पंथ चलावैं । धर्मदासके वंश कहावैं ॥

इति

अथ जगजीवनदासजी सत्यनामकी कथा—चौपाई

सतनामी जगजीवन दासा । अवध देशमें पंथ प्रकाशा ॥
कोटवा नग्रमें सो प्रकटाना । आहि मध्यमहि हिंदुस्थाना ॥
राजपूत कुल कर ठकुराई । सतगुरु कृपाते पंथ चलाई ॥
न्यारो ज्ञान आपनो भाखा । ताके भई बहुत शिषसाखा ॥
कारी तिलक देहिं निज माथा । आन्दू बांधें अपने हाथा ॥
आंदू एक भांतिको धागा । कंठीके बदले कर लागा ॥

इति

अथ रामकबीरजीकी कथा--चौपाई

राम कबीरकी कथा कहीजै । वैरागिनको ज्ञान गहीजै ॥
ठाकुर प्रतिमा पूजे सोई । रामकृष्णको ध्यावै ओई ॥
इत कबीर पंथिनसे मेला । उत बैरागिनमें मिलि खेला ॥
रामकृष्ण सम्बंधी जोई । प्रीति करे पूजै सब सोई ॥

इति

अथ नानकशाहजीकी कथा--चौपाई

नानकशाह कीन तप भारी । सब विधि भये ज्ञान अधिकारी ॥
भक्ति भाव ताको लखि पाया । तापर सतगुरु कीनो दाया ॥
जिंदा रूप धर्यो तब साँई । प्रभु पंजाब देश चलि आई ॥
अनहद बानी कियौ पुकारा । सुनिकै नानक दरश निहारा ॥
सुनिके अमर लोककी बानी । जानि परा निज समरथ ज्ञानी ॥

नानक वचन

आवा पुरुष महागुरु ज्ञानी । अमरलोककी सुनी न बानी ॥
अर्ज सुनो प्रभु जिंदा स्वामी । कहँ अमरलोक रहा निजुधामी ॥
काहु न कही अमर निजुबानी । धन्य कबीर परमगुरु ज्ञानी ॥
कोइ न पावै तुमरो भेदा । खोज थके ब्रह्मा चहुँ वेदा ॥

जिन्दा वचन

जब नानक बहुतै तप कीना । निरंकार बहुते दिन चीन्हा ॥
निरंकारते पुरुष निनारा । अजर द्वीप ताकी टकसारा ॥
पुरुष बिछोह भयौ तुव जबते । काल कठिन मग रोंक्यौ तबते ॥
इत तुव सरिस भक्त नहिं होई । क्यों परपुरुष न भेटेंउ कोई ॥
जबते हमते बिछुरे भाई । साठि हजार जन्म तुम पाई ॥
धरि धरि जन्म भक्ति भलकीना । फिर काल चक्र निरंजन दीना ॥
गहु मम शब्द तो उतरो पारा । बिन सतशब्द लहै यम द्वारा ॥

तुम बड़ भक्त भवसागर आवा । और जीवको कौन चलावा ॥
निरंकार सब सृष्टि भुलावा । तुम करि भक्तिलौटि क्योंआवा॥

नानक वचन

धन्य पुरुष तुम यह पद भाखी । यह पद अमर गुप्त कह राखी॥
जबलों यम तुमको नहिं पावा । अगम अपार भर्म फैलावा ॥
कहो गोसाँई हमते ज्ञाना । परमपुरुष हम तुमको जाना ॥
धनि जिंदा प्रभु पुरुष पुराना । विरले जन तुमको पहिचाना॥

जिन्दा वचन

भये दयाल पुरुष गुरु ज्ञानी । गहो पान परवाना बानी ॥
भली भई तुम हमको पावा । सकलो पंथ कालको धावा ॥
तुम इतने अब भये निनारा । फेरि जन्म ना होय तुम्हारा ॥
भली सुरति तुम हमको चीन्हा । अमरमंत्र हम तुमको दीन्हा॥
स्वसमवेद हम कहि निज बानी । परमपुरुष गति तुम्हैं बखानी॥

नानक वचन

धन्य पुरुष ज्ञानी करतारा । जीवकाज प्रकटे संसारा ॥
धनि करता तुम बंदी छोरा । ज्ञान तुम्हार महा बल जोरा ॥
दिया दान गुरु किया उबारा । नानक अमरलोक पग धारा ॥

इति

चौपाई

यहि विधि नानक गुरुपद गहेऊ । शिष शाखा तेहि जगमें रहेऊ॥
गुरुपद तजि बहु पंथ चलाये । अन्य देवकी सेव गहाये ॥
परमपुरुष पद नहिं पहिचाना । भांति अनेक बनायो बाना ॥
अजहूँ गुरुकी तीन निशानी । गहै कछुक गुरुकी निज बानी॥
द्वितिये सत्यनामकी साका । तृतिये देखा श्वेत पताका ॥
क्षत्री कुल नानक तन धारी । ताको सुयश गाव संसारी ॥

इति

अथ गरीबदासजीकी कथा-चौपाई

गरीबदासकी कथा बखानो । जाटके कुलमें सो प्रकटानो ॥
दिल्ली निकट नग्र छोटियानी । सतगुरु कृपा भयो सो ज्ञानी ॥
सत्यकबीरको सुशय उचारा । जक्तमाहिं निज पंथ पसारा ॥
सतगुरुकी अस्तुति भल गावै । अधिक प्रीति मनमाहिं बढ़ावै॥
एकसौ वर्ष ताहि चलि गयऊ । प्रकट गरीबदास तब भयऊ ॥

इति

अथ कबीर आचार वर्णन-चौपाई

सत्यनामकी सेवा धारा । सुमिरण ध्यान नाम निरधारा॥
सतगुरु वर्णन प्रीति सुहाये । मूरतिको नहिं शीस नवाये ॥
तीरथ व्रत मूरति भ्रमजाला । सत्यभक्ति गहिये सत चाला ॥
निरगुण सरगुणको तजि दीजै । सत्यपुरुषकी भक्ति गहीजै ॥
संत गुरूकी सेवा धारे । तन मन धन अर्पण करि डारे॥
कोटिन तीर्थ गुरूके चरना । संचय सोच पोच सब हरना ॥
दुखी दीन देखत दुख लागा । परमारथ पथ तन धन त्यागा॥
गृही साधु दोउ एक समाना । परमदयाल दोहूको बाना ॥
मद्य मांस भष जगमें जोई । महा मलीन जानिये सोई ॥
परम दया सब जिवपर पालौ । अधोदृष्टि मारगमें चालौ ॥
हिंसा कर्म जेते जगमाहीं । ताके कबहुँ निकट न जाहीं ॥
सब जीवनकी कर रखवाली । जीवघात कहुँ बात न चाली॥
वर्षा ऋतु जब जिव अधिकारा । तब नहिं कबहुँ पंथ पग धारा ॥
अमल नाम जगमें हैं जेते । सकल अभक्ष जानिये तेते ॥

सत्यकबीर वचन

साखी-विष्णुधर्म जैनी दया, मुसलमान यकतार ।
ये तीनों जब जानि लै, तब जिव उतरे पार ॥

चौपाई

तीनों जहाँ होय संघट्टा । सो कबीर आचारको ठट्टा ॥
शौच अचार शुद्ध सब करनी । उज्ज्वल क्रिया बइष्णव बरनी ॥
अंतर बाहर परम पुनीता । हिंसा रहित कर्म चितचीता ॥
जस जैनी जिव दाया पाला । ताही सम कबीर मुनि चाला ॥
मुसलमानके जिमि अल्लाहा । ताहीते निज नेह निबाहा ॥
तिमि कबीर मुनिके सतनामा । रह लौलीन सदा सो तामा ॥
स्वसमवेद विधि करि शुभकर्मा । सार शब्द गहि पावै मर्मा ॥
सतगुन गहे बइष्णव तातें । भाषे परम पुरुषकी बातें ॥
शुक्ल भेष सब शुक्लाचारा । शुक्लवर्ण शुक्लै ब्यौहारा ॥
शली टोपी तुलसी माला । कंठी कंठमें तिलक विशाला ॥
सूत्र रु शिखा बइष्णव बाना । योग युक्ति गुरुधर्म प्रमाना ॥
करकमंडल चोला पहिरे । चर्चा ज्ञानमाहिं बड़ गहिरे ॥
तत्त्वमाहिं निःतत्त्व बताई । झीना ज्ञान कथै ऋषिराई ॥
असन वसन विधिवत सो धरई । धर्मवस्तु कछु संग्रह करही ॥

इति

अथ तिलकस्वरूपवर्णन–चौपाई

ऊर्ध्वपुण्ड्र अरु दंडाकारा । शुभ्रतिलक तेहि सोह लिलारा ॥
नासा अग्र भागते काढा । मस्तक अंत प्रयंत लो ठाढा ॥
नाकबांस दोउ भृकुटी बीते । मस्तक अंत प्रयंतलों खींचे ॥
दंडाकार सो तिलक बताई । तासु महामन कहो न जाई ॥
यमर्दडनको दंडक दंडा । कर्म भर्म सो कर शतखंडा ॥
परम बइष्लव तिलक जो धारी। तिलकदेखि यम बिलखि सिधारी
ताको अर्थ कहो किमि जाई । सुर नर मुनि कोइ पार न पाई ॥

दोय स्वरूप अकार बखाना । एक थूल यक सूक्षम जाना ॥
सूक्षम रूप अकार है एही । विष्णु विश्वंभर कहिये तेही ॥
स्वर व्यंजन द्वै भांतिके अक्षर । सबहीको मह पितु अकारबर ॥
स्वर अक्षरको आदि अकारा । सोई सर्व धर्म नय सारा ॥
स्थूलस्वरूप अकार जो कहिये । सकल स्वरनके आदिमें लहिये ॥
स्थूल रूप ह्वै जग विस्तारा । सूक्षम रूप रमै संसारा ॥
परम पुरुष है आदि अकारा । अमल अलेख अभेद अपारा ॥
आदि अकार जो गह्यो विकारा । ताते भयो सकल संसारा ॥
आदि अकारते तीनों गुन है । सतगुणरूप अकार विष्णु है ॥
थूल अकार विकार गहंता । सबही वर्णन माहिं रमंता ॥
वासुदेव सो रमै चराचर । लखि नहि परत सो अलख अगोचर ॥
संस्तृत महँ सोई आकारा । अल्लिफ पारसीमाहँ पुकारा ॥
सो अल्लिफ अल्लीह कहाया । ताहि अलिफते सबजग जाया ॥
ताकी सिफत कही नहिं जाई । पीर पयंबर पार न पाई ॥
जो कोई अल्लिफ पहिचाना । ताही रूपमाहिं मिलि जाना ॥
चार खानि जेते जगमाहीं । बिना अल्लिफ कतहू कछु नाहीं ॥
कहूँ गुप्त कहुँ प्रकट निहारी । यह अल्लिफ सब माहिं बिहारी ॥
देखे ताहि कोइ कोइ साधू । जिनके हृदये ज्ञान अगाधू ॥
तेहि अल्लिफकी कथा अपारा । गिरा गनेश शेष कथिहारा ॥
नर बपुरा सो किहि विधि कहई । शिव सनकादिक मूक ह्वै रहई ॥
सत्य कबीरको तिलक है येही । वंशके साधु जो मस्तक देही ॥
इतर पंथको तिलक हैं न्यारे । वेद धर्मकी रीति विचारे ॥

इति

अथ सत्यकबीरको ग्रामक्षेत्र वर्णन--वार्ता

सहज सुरति संप्रदा धीरज धाम दशमद्वार त्रिपुटी तीरथ ॥

सुष्मना सुख विलास । काया रामशाला अगम इष्ट । निश्चित नाम उपाशी लौ माला मनसा देवी मनसो देव अलख अचा-रज सत्य गोत्र समुझ शाखा वेदविचार खासा सुमिरन निह अक्षर मंत्र प्रीति परिक्रमा जीव योग ऋषि निजमन· निजब-इल्लव निर्भय मुक्ती गुरु शब्द गुरुपाट येता धाम क्षेत्र अवि-नाशीकी सेजपर कबीरने सुनाया । इतना अर्थ ले काशी कबीर गुरु रामानन्द पास आया ।

इति धामक्षेत्र

अथ जीवके अंतकालको वर्णन--चौपाई

अंतकाल जब जिवको आवै । यथा कर्म तस देही पावै ॥
हेठ द्वार जब जीव निकाशा । नरकखानिमें ताको बासा ॥
ठेले नरक शीस बल जाई । ताहीमें पुनि रहै समाई ॥
नाभिद्वार जो प्रान चलाना । जलचर योनि माहिं प्रकटाना ॥
मूलद्वार कर जीव पयाना । पशू योनिमें तासु ठिकाना ॥
जीभ द्वारते जिव कढ़ि आवै । अन्नखानिमें बासा पावै ॥
श्वासद्वारते जिव जब जाता । अंडजखानिमें सो प्रकटाता ॥
नेत्र द्वार जब जीव सिधारा । मक्खी आदिक तन सो धारा ॥
श्रौन द्वारते जिव जब चाला । प्रेम देह पावै ततकाला ॥
दशमद्वारते निकसै प्राना । राजा होय भोग विधि नाना ॥
रंभ द्वारते जिव जब जाता । परम पुरुषके लोक समाता ॥

इति

अथ हंसनको स्थानवर्णन सत्य कबीर वचन--चौपाई

तेज अंड है पालँग बारा । द्वै पालंग मध्य अँधियारा ॥
सालोक्यमुक्ति मृतलोक बखाना । मानसरोवर तिहि अस्थाना ॥
धीया अंश तहाँ बैठारा । चौसठ कामिनि संग बिहारा ॥

जो कोइ बाम मताको ध्यावै । सो सालोक मुक्तिको पावै ॥
सहस साठ वैकुंठ रहाई । तहाँ सुमेर रहा ठहराई ॥
धर्मराय अविनाशी रहई । पुण्य पापको लेखा गहई ॥
तहाँ सामीप मुक्ति है सोई । नौसे सखी तेरह सँग होई ॥
पांच शिखा सुमेर रहाई । पांचो अंश कला तहँ लाई ॥
ईशान कोन ध्रुव आसन कीना । बाइब कोन इन्द्र अस्थाना ॥
नैर्ऋत कोन यमनको थाना । अग्नीकोन इन्द्र अस्थाना ॥
जाको धर्मरायमें कहिया । मध्य विष्णु सिंहासन लहिया ॥
सहस साठि वैकुण्ठ प्रमाना । तहाँते शून्य डोरि बंधाना ॥
मारग जो निर्वानहि ध्यावै । सो समीप वैकुंठहि पावै ॥
मेरूते शून्य अठारह कोरी । तहँवा लगी शून्यकी डोरी ॥
शून्य मध्य है द्वीप अनूपा । तहाँ निरञ्जन ज्योतिस्वरूपा ॥
अंधकार है शून्य मझारा । द्वै पालंग शून्य बिस्तारा ॥
चार करोर ज्योति उजियारी । शोभा अद्भुत तासु निहारी ॥
सारूप मुक्ति सोई तब पाई । मारग भेद अघोर चलाई ॥
आगे अक्षरको अस्थाना । पालँग एक तहांते जाना ॥
अक्षर योग माया विस्तारी । मुक्ति सायुज्य महै मतधारी ॥
तहाँते चार वेद परमाना । चौथी मुक्तिको यही ठेकाना ॥
तहाँते आगे कोइ न गेऊ । यह मत चारो वेदन कहेऊ ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास बिनती चित लाई । साहेब कहो भेद समुझाई ॥
चार मुक्ति अस्थान बतावो । आगे कहो भेद जिमि पावो ॥
बस्ती शून्य बीचकी भाखो । समरथ मोहि गोय जिनिराखो ॥

सत्य कबीर वचन

धर्मदास तुम भलके जानी । जो बूझो सो कहों बखानी ॥

एक असंख अक्षरते आगे । अचिंत नामको डोरी लागे ॥
अधर द्वीप है ताको नामा । परम रम्य अक्षर विश्रामा ॥
निरतै प्रेम सुरति तिहि द्वारा । तिहि सँग सखी बारहहज्जारा ॥
तीन अंश आगे परमाना । ओहं सोहं को अस्थाना ॥
आठ अंश तहवाँ उपजाये । अंश वंश अस्थान बनाये ॥
ओहं सोहं होत उचारा । तहांते शून्य डोर बंधाना ॥
आगे सहज सुरति अस्थाना । तहांते शून्य डोर बंधाना ॥
आगे शून्य है पांच असंखा । मूल सुरत अस्थान बिसंखा ॥
तेहि सँग हंस बावन हज्जारा । पांच ब्रह्म उनते उपचारा ॥
चार असंख शून्य तेहि आगे । इच्छा सुरति तहाँ अनुरागे ॥
खात सनेही जिनको धारा । तिन संग हंस पचीस हजारा ॥
आगे शून्य असंख द्वै जाना । तहाँ अकूर सुरति अस्थाना ॥
पांचहजार हंस सँग सांचे । तिनकी सुरति हंस सब बांचे ॥
जहाँ अकूर केर परमाना । तिल परमान द्वार अनुमाना ॥
बिहग शब्द तहँ लागी डोरी । चढि हंसा गये पुरुष सोरी ॥

साखी–सोरह असंख लोक है, धर्मन करो विचार ।
चार असंख है बस्ती, बारह सुन्न पसार ॥

चौपाई

आदि अन्त अरु वंश पसारा । तहँलगि देख शून्य बिस्तारा ॥
यतना तजि जब होय निनारा । हंसा आवै लोक हमारा ॥
हमैं चीन्हि सतगुरु रस पीये । कर्म तोरिके युग युग जीये ॥
निशदिन सतगुरु सुरति लगावे । साधु सन्तके चितै समावे ॥
जापर दया सन्त गुरु केरी । तिनकी कटी कर्मकी बेरी ॥
करि करनी अभिमान भुलाई । तन छूटे यम ले धरि खाई ॥
तन मन धन ले प्रीति लगावै । सो हंसा सतलोक सिधावै ॥
सत्यलोक है अधरस नीपा । ता मध्ये सत्ताइस द्वीपा ॥

सत्य शब्दको टेका दीना । ऐसे बिधि पुहमी रचि लीना ॥
सागर सात तहाँ बिस्तारा । चलि हंसा जहँ करे बिहारा ॥
पुहुपद्वीप है मध्य सिंहासन । कलाद्वीप हंसनको आसन ॥
साखी-अबिगति भूषन अंगमें, अबिगति करे शृंगार ।
अबिगति बस्तर छाजई, अबिगति करे अहार ॥

इति

अथ प्रलय वर्णन--चौपाई

तीन प्रकारकी सृष्टि बखानो । प्रथमे ब्रह्म सृष्टि कहि गानो ॥
द्वितिये जीवकि सृष्टि कहायौ । तृतिये माया सृष्टि बतायौ ॥
ब्रह्म सृष्टि आचिन्त प्रमाना । जीव सृष्टि अक्षरते जाना ॥
माया सृष्टि निरञ्जन करता । सिरजै पोषै पुनि संहरता ॥
माया सृष्टि जाय बिनसाई । जीव ब्रह्म नहिं प्रलैमें आई ॥
रचना सेखि निरंजन लेता । गूमट शीस माहिं धरि देता ॥
शिरमें गूमट अजब कहाई । सकल सृष्टि तेहिमाहँ समाई ॥
प्रलयको द्यौस आव जेहिबारा । जक्त समस्त होय संहारा ॥
पुनि जलते पूरे संसारा । उठै चहूँ दिसि लहरि अपारा ॥
जलकी ऐसी बृद्धि बताई । अति उतंग पानी चढि जाई ॥
पृथ्वीते ऊपर जल सोई । दश योजन लों ऊँचा होई ॥
अन्तकाल कलियुग जब आवै । चीन्ह भयापन बहुत देखावै ॥
सवासौ वर्ष ग्रहन निरधारा । चंद ग्रहण सत वर्ष बिचारा ॥
ताहि ग्रनते लेखा लीजे । कलियुग लोक प्रवाना दीजे ॥

नानक वचन

परलय की बिधि कहो दयाला । अलख ज्योति वर्षे केहि ख्याला ॥
काल बली तुमको नहिं माना । प्रलयकाल तेहि कहा ठिकाना ॥

जिवा वचन

सुन नानक यह भेद अपारा । काल प्रलय जब करे संहारा ॥

रचना निगलि निरंजन लेता । अमरलोकसे अलगहि रहता ॥
लै रचना फिरता सो रहई । घूमट शीशमें सब जिव गहई ॥
प्रलय द्वीपते पुरुष निनारा । सो साहिब नहिं जग औतारा ॥
प्रलय निरंजन संग पसारा । ले बैठे सब आप मझारा ॥
तेज रूप बतैं नौ खंडा । लेय समेटि सकल ब्रह्मंडा ॥
तीन देव चौकी उठि जाई । मेरु सुमेरु सिंधु चलि आई ॥
शून्न अकाश बतं नौ खंडा । पाँच तत्त्वको रहै न झंडा ॥
ॐकार मठ रहै समाई । सो फिरता रह शून्नमें भाई ॥
सत्तर युग लों झूलत रहई । ता पीछे अति संकट गहई ॥
तब युग सत्तर शून्न रहीता । प्रलय करे सब जिवन भरीता ॥
फिर अमरावति छाह सिधाई । फिर सतपुरुषको टेरत भाई ॥
दुखित होय अरजी तब लाया । पुरुष दयाल देइ मन भाया ॥
तबहिं पुरुष ज्ञानीको टेरो । जाय शून्नमें कीजे फेरो ॥
कहो निरंजनपै अब जाई । कूर्म पीठपै बैठहु भाई ॥
चलिकै फिर हम तापहँ आये । पुरुष बचन ताको समुझाये ॥
सुनो निरंजन बचन हमारा । जाय कूर्मपै करो पसारा ॥
रचना करो सकल ब्रह्मंडा । जाय कूर्मपै रोपौ झंडा ॥
सुन्यौ निरंजन सो फरमाना । सुनिके बचन कियौ परमाना ॥
सुनि सो बचन निरंजन धाये । जहां कूर्म तहवाँ चलि आये ॥
बैठ कूर्मपै सतशब्द उचारा । रचना प्रकट भई सतसारा ॥
पाँचतत्त्व परगट तब कीना । सात शून्य पर आसन दीना ॥
जलके ऊपर मही छवाई । नवो खंड सूमेर रचाई ॥
तहँ सुमेर परवत फैलाई । तब मुखते अद्या प्रकटाई ॥
मिलि दोनो तिरदेव उपाई । यहि विधि सब रचना फैलाई ॥
उपजे ब्रह्मा विष्णु महेशा । नारद शारद गौरि गनेशा ॥

इति

अथ नरक वर्णन–चौपाई

प्रथमहि जल रंगी कहि गाया । ताके ऊपर कूर्म बताया ॥
कूर्मके ऊपर मीन कहीते । मीनके ऊपर कच्छप थीते ॥
कच्छपपर बाराह बखाना । तापर शेष नाग अस्थाना ॥
शेषनाग निज शिरपर धारा । पृथ्वी सहित सकल महिभारा ॥
सात नरक चौरासी कुंडा । पर तामें पापिनको झुंडा ॥
तहूँ यमदूत ताडना करही । दंड प्रचंड जीव दुख भरही ॥

इति

अथ चौदह यमके नाम

दोहा–मृत्यु शृंग प्रथमै कहो, क्रोधित अंध बताय ।
द्रुगदानी तीजे कहो, मन मकरंद जताय ॥
चितचंचल पंचम गनौ, छठे अपर्बल नाम ।
अंध अचेत है सप्तमें, कर्मरेख पुनि मान ॥
अग्निघंट नौमे कहो, कालसेन पुनि चीत ।
मनसा मलई ग्यारहें, बरहे कह भयभीत ॥
पुनि तालुका है तेरहे, सूरधार दशचार ।
यमगन जेते नरकमें, ये चौदह सरदार ॥

इति

अथ सत्यकबीरके गुप्त होनेका वर्णन–चौपाई

संवत पंद्रहसौ उनहत्तर । देश उडैसे सतगुरु पगधर ॥
पुनि मगहर चलिगे गुरुदेवक । हिंदू मुसलमान जहँ सेवक ॥
बीरसिंह नरनाथ बघेला । सत्तकबीरको सो तहँ चेला ॥
बिजुलीखाँ पठान सोऊ राजा । शिष्य कबीरको तहां विराजा ॥
बिजुलीखां जब यह सुनि पाई । अब गुरु जगसे जाहिं लुपाई ॥
तब तासे पूछौ सो भेवा । हिंदू मुसल्मान गुरुदेवा ॥

जब सतगुरुको निज तन त्यागे । कौन धर्म प्रभुको सुभ लागे ॥
हिंदू कैधौं मूसलमाना । मृत्युकर्म किहि बिधिते ठाना ॥
तब कबीर तेहि उत्तर देऊ । जौं तुम लोथ हमारी लेऊ ॥
तौ अपनी कुलरीति बिचारा । मृत्युकर्म कर तेहि अनुसारा ॥
पुनि गुरु बीरसिंह गृह गयऊ । राजा रानी हर्षित भयऊ ॥
चादर तानके पौढ़े जाई । भये अबोल कबीर गोसांई ॥
राजा रानी जब अस लखेऊ । बिकल भये सतगुरु तन तजेऊ ॥
रुदन करे जब राजा रानी । नग्र शोर भा लोगन जानी ॥
बिजुलीखां नृपको गुरुभाई । सुनत खबर तुरितै उठि धाई ॥
बीरसिंहसे बचन सुनावो । सतगुरु लोथ हमैं देखलावो ॥
नृप गुरुलोथ जो परगट कीन्हा । बिजुलीखां तेहि जोरसे लीना ॥
ले भाग्यौ सो गाड़ौ जाई । राय बीरसिंह तब रिसियाई ॥
ले निजु सैन संग तेहि बेला । चढे बीरसिंह राय बघेला ॥
दोनों दिशिते दल उमड़ाने । एक न कहा एकको माने ॥
जब घमसान होनेपर भयऊ । तब अकाशबानी अस कहेऊ ॥

कवित्त

अकथ कहानी तहँ बोले नभबानी सुनो, दोउ दल ज्ञानी ॥ जिव हानीमें न दीजिये । बिज्लीखां पठान कह ठाढे हो पठान॥ पीर, सिंहजी बघेल दहपेल मति कीजिये ॥ हाड चाम देह ॥ जन्म मरन न पीर ऐसो, साहिब कबीर सत्य बातको पतीजिये । कबुर खुदाय नहि लोथ कहुँ पाय कछु, तहँ दरसाय दोऊ भाग करि लीजिये ॥

चौपाई

यह सुनि दोनों रह ठहराई । तब चलिके सो कबुर खुदाई ॥
अस अचरज तहँ देख्यो जाई । कतहुँ लोथ गुरु दृष्टि न आई ॥

कबुरमें चादर पुष्प सो पाई । ले दोनों द्वै भाग बनाई ॥
मुसलमान तेहि कबुरमें धरेऊ । हिंदू ले समाधसो करेऊ ॥
हिंदुनके कबीर चौरा है । तुरकनके कबीर रोजा है ॥
इत हिंदू सेवै गुरुदेवा । मुरशिद मुसलमान उत सेवा ॥
बालरूप जब गुरु प्रकटाना । कमलपुष्पमें कर निज थाना ॥
अंतकाल जब गयौ दुराई । गौरमें सोइ पुष्प देखलाई ॥
आदि अंत जाके नहिं देही । जन्म मरन कबहूँ नहिं तेही ॥
सकल विकार तो जो प्रभुपारा । जीवकाज तनधर संसारा ॥
सह्यौ निरादर दुःख अधिकाई । निज दासनको दास कहाई ॥
सो सब जीव हेतको दीसा । समरथ परमगुरू जगदीशा ॥
कबुर बीचते गये लोपाई । मथुरा नग्रमें पहुँचे जाई ॥
नीरू नीमा जोलह जोला ही । तन तजिके परकटभे ताही ॥
दोनोंको निज शब्द गहाई । जाते भवनिधि फेर न आई ॥
मथुरा नग्रते बहुरि सिधाई । धर्मदास ढिग सतगुरु आई ॥
धर्मदासहि बहु भांति शिखाई । सहितदेह पुनि गयौ लोपाई ॥
महा कठिन युग कलियुग होई । शुभ करनी जिव करे न कोई ॥
यज्ञ योग जप तप व्रत दाना । भाव न भक्ति विषय लपटाना॥
तिनको काज कौन बिधि सुधरे । बिन कबीर गुरु पार न उतरे ॥
दयासिंधु तेहि पार लँघावै । सत्यकबीर कि सरन जो आवै॥

सत्यकबीर वचन

बावन बीर कबीर कहावो । कलियुगकेर जीव मुक्तावो ॥

इति

अथ स्वसमवेदकी स्फुटवार्ता—चौपाई

एकलक्ष अरु असी हजारा । पीर पयंबरको औतारा ॥
सो सब आहि निरंजन वंशा । तन धरि धरि निज पिता प्रसंशा॥
दश औतार निरंजन केरे । राम कृष्ण सबमाहिं बडेरे ॥

पूरन आप निरंजन होई। यामें फेरफार नहिं कोई॥

दोहा-पांच सहस अरु पांचसौ, जब कलियुग बित जाय।
महापुरुष फरमान तब, जग तारनको आय॥
हिन्दु तुर्क आदिक सबै, जेते. जीव जहान।
सत्य नामकी साख गहि, पावैं पद निर्बान॥
यथा सरितगण आपही, मिलैं सिन्धुमें धाय।
सत्य सुकृत के मध्ये तिमि, सबही पंथ समाय॥
जबलगि पूरण होय नहिं, ठीकेको तिथि वार।
कपट चातुरी तबहिलों, स्वसमबेद निरधार॥
सबहिं नारि नर शुद्ध तब, जब टीका दिन अंत।
कपट चातुरी छोड़िके, शरण कबीर गहंत॥
एक अनेक न ह्वै गयो, पुनि अनेक हो एक।
हंस चलै सतलोक सब, सत्यनामकी टेक॥
घर घर बोध विचार हो, दुर्मति दूर बहाय।
कलियुगमें इक है सोई, बरते सहज सुभाय॥
कहा उग्र कह क्षुद्र हो, हर सबकी भवभीर।
सो समान समदृष्टि है, समरथ सत्य कबीर॥

बिनय-चौपाई

बिन्ती करौं संत गुरु पाहीं। जो मम दोष न हृदय गहाहीं॥
निज अपराध कहौं किन खोली। कहुँ कहुँ मैं बदल्यों गुरु बोली॥
मम बानी अरु सद्गुरु बानी। दोनों यहि मत मेले सानी॥
जहँ जस उचित देख तस कीना। सूक्षम गुरु वाणी गहि लीना॥
मेरो दोष न कछु तहँ लेखब। सत्य कबीरकी बानी देखब॥
सत्य कबीरको ग्रन्थ निहारा। सब कछु लिख्यों ताहि अनुसारा॥

इति श्रीस्वसमवेद धर्मबोध समाप्त

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतान,
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम,प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दयानाम की दया,
वंश ब्यालीसकी दया।

अथ श्रीबोधसागरे

त्रिंशत्तमस्तरंगः

धर्मबोध प्रारम्भः

★

गृहीधर्म वर्णन

दोहा–गृहाश्रमीके धर्मको, वर्णन करों सुजान।
जिहि आश्रम आश्रम सकल, आश्रम कतहुँ न आन॥
सांझ सकार मध्याह्नको, सन्ध्या तीनों काल।
धर्म कर्म तत्पर सदा, कीजै सुरति सँभाल॥

कोटिन कंटक घेरि ज्यों, नित्य क्रिया निज कीन ।
सुमिरन भजन एकांतमें, मन चंचल गहि लीन ॥
साधू गुरु सेवा करे, श्रद्धा प्रेम सहीत ।
देव परम प्रभु ध्यावई, करि अतिशय मन प्रीत ॥
तन मन साधु जो सेवई, जपे निरंतर नाम ।
गृही सो पावै परमपद, योग समाधि न काम ॥
पुरुष यती सो जानिये, निज तिय तीय विचार ।
मात बहिन पुत्री सकल, औरी जो जग नार ॥
तिय ऐसो व्रत धर्मधर, निज पति सेवत जोय ।
इतर पुरुष जे जगतमें पिता भ्रात सुत होय ॥
पतिकी आज्ञामें रहे, निज तन मनते लाग ।
पिय विपरीत न कछु करे, ता तियको बड़ भाग ॥
मनकामना विहायके, हर्षसहित कर दान ।
सो तन मन निर्मल भया, होय पापकी हान ॥
यज्ञ दान बिन गुरु करे, निशि दिन माला फेर ।
निष्फल है करनी सकल, सतगुरु भाषे टेर ॥
प्रथमै गुरुसे पूछिये, कीजै काज बहोर ।
सो सुखदायक होत है, मेटे जिवका खोर ॥
अभ्यागत आगम निरखि, आदर मान समेत ।
भोजन छाजन बित यथा, सदा काल जो देत ॥
सोई म्लेच्छ सम जानिये, गृही जो दान विहीन ।
यहि कारण नित दान कर, जो नर चतुर प्रवीन ॥
पात्र कुपात्र विचारिके, तब दीजै तेहि दान ।
देता लेता सुख लहै, अन्त होय नहिं हान ॥
भूखा साधु भिखारि कोइ, नहिं आवे जब द्वार ।

तादिन मन पछतात बहु, करत अकेल अहार ॥
भोजनपाक निहारिके, इत उत द्वारे झांक ।
अभ्यागत भूखा निरखि, मारे तत्क्षण हांक ॥
बिन हरिकृपा न सन्त मिल, संत मिलन सुखसार ।
तिनके आश्रय मुक्ति गति, सङ्कट सकल निवार ॥
गृही होय तो भक्ति कर, नातो करु वैराग ।
दोहु भावते एक गहु, थोथी कथनी त्याग ॥
फल कारण सेवा करे, निशि दिन याचे राम ।
कह कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥
सज्जन सगे कुटुम्ब हितु, जो कोइ द्वारे आव ।
नहीं निरादर कर कोई, राखे सबको भाव ॥
रहे सदा निज गेहमें, सुमिरनमें लौलीन ।
ऐसे गृहीको काम कह, करवा अरु कौपीन ॥
कौड़ी कौड़ी जोरिके, कीने लक्ष करोर ।
कौड़ी एक न सँग चले, केतो दाम बटोर ॥
जो धन हरिके हेत नहिं, धरम राह नहिं जात ।
सो धन चोर लबार गह, धर छातीपर लात ॥
सतको सौदा जो करे, दम्भ छिद्र छल त्याग ।
अपने भागको धन लहै, परधन विषसों लाग ॥
भूखा जेहि घरते फिरे, ताको लागे पाप ।
गृही पाप ले जात है, पाप आपनो थाप ॥
साधु न जेवें जाहि घर, ता घर जेवें भूत ।
कलिमल ग्रसित सो जानिये, छुटै न कबहूँ छूत ॥
गृही भक्त निज धर्मरत, ताको साधु विचार ।
परमप्रीति जेहि साधुते, परम धर्म धन धार ॥
प्रथमहि साधु जेंवाइये, पीछे भोजन भोग ।

ऐसे पापको टालिये, कटे नित्यको रोग ॥
जाके सुख सब धाम है, मन विरक्त हो जाहि ।
गृही सो साधू जानिये, दाग न लागे ताहि ॥
जो सुत बित मिथ्या लखे, दुख सुख एक समान ।
परम भक्त सो गृही सोइ, पावै पद निर्बान ॥
हरिपद प्रीति लगाइये, औरते तजि निर्वाह ।
गृही होय कै साधुते, यही तरनकी राह ॥
यद्यपि उत्तम कर्म करि, रहै रहित अभिमान ।
साधु देखि शिर नावते, करते आदर मान ॥
बार बार निज श्रवणते, सुने जो धर्म पुरान[1] ।
कोमल चित्त उदार नित, हिंसा रहित बखान ॥
न्याय धर्म युत कर्म सब, कर न कबहुँ अन्याय ।
जे अन्यायी लोग हैं, बांधे यमपुर जायँ ॥
सरल सुभाव रहे सदा, कोह द्रोह न विषाद ।
प्रीति शुद्ध सत गुन गहे, संतत संत प्रसाद ॥

अर्थ–जो क्रोध द्रोह और मिथ्या विचारसे रहित होकर कपट रहित सन्तोंकी कृपा चाहता है वह सन्तोंकी दयासे शांत शुद्ध सत्य और पुण्य रूप पदार्थ सत्यपर पारखको प्राप्त होता है ।

साथा लाभ संतोष कर, तृष्णा तरल तरंग ॥
उठन न पावै हृदयमें, कीजै ज्ञानते भंग ॥
गृही साधु दोउ जानिये, चक्र धर्म रथकेर ॥
दोहु बिन कारज ना सरे, मिलके कलिमल पेर ॥

---

१ पुरान कथा, धर्म निर्णय जिसके अन्दर लिखा हो और जिसमें धर्मवीरोंकी कथा हो ।

गृहकारजमें पाप बहु, नित लागे सुनु लोय ।
ताहित दान अवश्य है, दूर ताहिते होय ॥
चक्की चौका चूल्ह महँ, झाड़ू अरु जलथान ।
गृह आश्रमीको नित्य यह, पाप पंचबिधि जान ॥
और युगनमहँ गृही कर, योग यज्ञ मख जाप ।
कलिमें सो कछु होय नहिं, कटै दानते पाप ॥
यथायोग जग लोग सब, बिन सम कीजे दान ।
कह राजा कह रंक है, दोनों एक समान ॥
जो धन पाय न धर्मरत, नहीं दान व्यवहार ।
सो शिर पावँको भारभरि, बंधे यमपुर द्वार ॥
गुरुजन जो परिवारके, कर आदर सतकार ।
लघु गुरुलोग जो योग जस, कुलको पालनहार ॥
पुत्र पौत्र बनितादि जे, इतर जेते लघु देख ।
भलो सिखावन दीजिये, जाते भला बिसेख ॥
जो गुरुजन परिवारके, लघुको शीख न देत ।
जो कछु औगुन सो करे, अघ शिर अपने लेत ॥
सोई मित्र सोई सगा, भल शिख शिशुहि दिखाव ।
तरुण अवस्था सुख लहै, गुरुजन सीख प्रभाव ॥
मारि ताड़िकै हठ किये, बाल अधर्मका राह ।
शुभगुण ज्ञानके पंथमें, बांधि चलाओ ताह ॥
मातु पिता सो शत्रु है, बाल पढ़ावे नाहिं ।
हंसनमें बकला यथा, तथा सो पण्डितमाहिं ॥
पहिले अपने धर्मको, भली भांति सिखलाय ।
अन्य धर्मकी सीख सुनि, भटकि बालबुधि जाय ॥
अपनो धर्म न जानेऊ, सीख्यो न्यारो धर्म ।

अज्ञानी यहि विधि किते, भूलि ते गह्यौ अकर्म ॥
जेते गृही हैं जगतमें, निज निज घरके भूप ।
हुकुम चलै निज भौनमें, भूपतिके तदरूप ॥
जिमि नृप चढै बजायके, धरती बस कर लेय ।
परजा सब तेहि बश भये, बिनयते भूपति सेय ॥
इमि सब गृही निशान दे, ब्याहको सजै बरात ।
भूमि नारि लहि प्रजाभे, सुत सुतादि लघु जात ॥
जो कछु धनको लाभ हो, शुद्ध कमाई कीन ।
धनतेदशवें अंशको, अपने गुरुको दीन ॥
जो गुरुनिकट निवास कर, तो सेवा कर नित्त ।
जो कहुँ दूर अनत बसे, ध्यान करे करि हित्त ॥
छठे मास गुरुदरश कर, सेवा कर निज वश्य ।
छठे मास जो पहुँच वहिं, वरषमें करो अवश्य ॥
गुरु विरक्त जो लेइ नहिं, शिष्य निज आरतदेह ।
गुरु आज्ञा अनुसार तो, दान पुण्य कर देइ ॥

अथ गृहस्थके विशेष लक्षण

सत्यबचन[1] प्रथमे कहो, दुतिये दया बताय ।
तीजो तप चौथे शौच, दोनो भांति कराय ॥
बाहर जलते शौच कर, अन्तर ज्ञान के द्वार ।
पच्यें तितिक्षा इच्छा, षट सतसंत निरुवार ॥
सप्तम सम दम अष्टमे, नवम अहिंसा होय ।
ब्रह्मचर्य्य दशमें कहा, त्याग एकादश जोय ॥
बरहें स्वाध्यायहि कहो, अरु तेरहें मृदु चित्त ।
चौदह तोष पुनि पंद्रहें, साधु सेव करे नित्त ॥
विषयत्यागकर सोलहें, सत्रहे वृथा सुखोपाय ।

१ सत्यसत्य ।

मौन अठारह सो कहा, वृथा बोल न गवाय ॥
ऊनविंश इस देहसे, आतम न्यारा जान ।
बिसवें जो अन्नादि कछु, बाँटिके भोजन पान ॥
ब्रह्म इकिसवें सर्वमय, नरमें निरख विशेख ।
वाइसवें पुनि श्रवण कह, तेइस कीर्तन लेख ॥
स्मृति[1] चौविश पच्चीसवें, पूजा सेवन छबीश ।
बन्दन दास्य अठाइसे, सख्य स्वार्पणा[2] तीस ॥

इति ३० लक्षण

केते जनकादिक गृही, जो निज धर्म्मप्रवीन ।
पायो शुभगति आपहू, औरनहू गति दीन ॥
हरिके हेतु न देत धन, देत कुमारगमाहिं ।
ऐसे अन्यायी अधम, बांधे यमपुर जाहिं ॥
जो दीने सो पाइहै, लुनै जो बोया बीज ।
जो नहिं बोया बीज है, पावै नहिं कछु चीज ॥
गाडा धन छाडा वृथा, जो दीना सो मोर ।
क्रूर विचार करे नहीं, लगे न हरिकी ओर ॥
निज धनके भागी जिते, सगे बन्धु परिवार ।
जैसा जाको भाग है, दीजे धर्म्म सँभार ॥
अपने भागको लीजिये, है *हराम पर हक्क ।*
सूकर गायकी सौंहपर, अहक्क ओर जनि तक्क ॥
गह्यो सुदामा भाग हरि, भयो महा कंगाल ।
और भाग विषसों तजो, धर्म्मनीति निजुपाल ॥
तन मन धन हरि हेत दे, चेत भक्ति कर प्रीति ।
यहि संसार असार लखि, चल जनकी विपरीति ॥

---

१ सुमिरन । २ आत्मसमर्पण ।

धन मन तन सब जायगो, रहे न जो कछु दीस ।
मूरख वृथा गवाँव सो, भक्ति भजे जगदीश ॥
महातिमिर घेरे हृदय, विषयभोग लपटान ।
सुमति न आई अजौं उर मरनकाल नियरान ॥
खाट परे तब झखई, नयनन आवे नीर ।
तब कछु यतन बनै नहीं, तनु व्यापे मृतु पीर ॥
देखे जब यमदूतको, ठाढ भे सन्मुख आय ।
महाभयंकर भेष लखि, इत उत जीव लुकाय ॥
सकल शिथिल इन्द्री भई, रहा न कोई ओट ।
अब कहँ भागिके जाइहौ, यमगण पकरी झोंट ॥
पुण्य भजन कीना नहीं, नहिं संतनसे हेत ।
बार बार पछतात मन, चिड़िया चुन गईं खेत ॥

इति गृहीधर्मका वर्णन समाप्त

अन्य गृहीधर्म वर्णन

(कबीर संग्रह)

दोहा—जो मानुष गृहधर्म युत, राखे शील विचार ।
गुरुमुख वाणी साधु सँग, मन वच सेवा सार ॥
सेवक भाव सदा रहे, अहम न आने चित्त ।
निर्णय लखे यथार्थ विधि, साधुनको कर मित्त ॥
सत्य शील दाया सहित, बरते जगव्यवहार ।
गुरू साधुके आश्रित, दीन बचन उच्चार ॥
बहु संग्रह विख्यानके, चित्त न आवे ताहि ।
मधुकर इव सब जगतमें, घटि बढ़ि लखि बर्ताहि ॥
प्रीति सदा गुरु पारख करई । संगति साधु सदा आचरई ।
उत्तम मध्यम जग व्यवहारा । निर्णयसहित करे अनुसारा ॥

दोहा—गृहीधर्म बड़ खटपट, तामें रहि हुशियार ।
लोक वेदकी रीति सब, करता सहित विचार ॥
जीवघात आदिक करम, करै न कबहूं भूल ।
सोइ रक्षा जीवन करे, प्रेम सहित अनुकूल ॥
बाणी अप्रिय कहै नहिं, कहै सबन उपकार ।
ठहरे पद बोधित गुरु, लावे भक्ति गोहार ॥
चारि खान बहु जीयरहि, दुखदाई जो होय ।
जुरे तो रक्षे जीव कहँ, अस कह रहे चुप सोय ॥
गुरु साधुहिं सन्मानई, मिथ्या जालहिं त्याग ।
सांच हृदय दाया सहित,निज सुख गुरु अनुराग ॥
दीन दयालको मत लखे, शिष्य स्वतःपद थीर ।
साधु गुरू सम जानिके, सबहि मन बच धीर ॥
साधुनकी जल अन्नते, वस्त्र सहित करै रच्छ ।
शक्य यथारथ अनुक्रम, गुरुसेवी शिष्य स्वच्छ ॥
गुरू साधुपद दीर्घजग, है शिष्य सबन प्रमान ।
त्रिबिधि ताहि सेवन करे, आपु दास पद मान ॥
है शिष्य जे दासातने, हंताते तेहि भीन ।
तेई गुरु पारख लखे, हंत कल्पना कीन ॥
तेई उत्तम पारखी, गुरुमतके अधिकार ।
हंता नाशे शिष्य जो, हंस थीर पदसार ॥
दास भाव सेवा सहित, भक्ति साधु गुरुकेर ।
यहि प्रकार हंसा वसे, सेवकको नहिं फेर ॥

निर्णय जो गुरुमुखही सूना । ताहि मनन साक्षातहु गूना ॥
प्रेम लगावे अस्ति पद माही । ठहरे गुरु पंचाइत पाही ॥

इति

अथ वैराग धर्म वर्णन

दोहा—दयापाल सब जीवके, बोले सत्य विचार ।
मन कर्म बानी त्यागकर, मैथुन अष्टप्रकार ॥
काठचित्रकी नाव जो, ताहू दिशि मत देख ।
देखतही तन विष चढै, सर्प दंशकर लेख ॥
मनमतंग मानै नहीं, मह्ा महाउत ज्ञान ।
ताते अंकुश दीजिये, हो कलिमलकी हान ॥
सुवरण मिट्टी एकसम, दत्त अदत्त न लेत ।
कार्य्य मात्र कछु लीजिये, भोजन छाजन हेत ॥
सकल परिग्रह त्यागिये, सूक्षम तनके काज ।
धर्म्म वस्तु जो राखिये, तौ ना होय अकाज ॥
भय नहिं देत न करतभय, निर्भय दृढ मनजास ।
सर्प सिंह आदिक लखे, रंचहु डरे नहिं तास ॥
काला सर्प शरीरमें, सब जग डारयो खाय ।
साधु अंग ना मोडई, ज्यों भावै त्यों खाय ॥
सम्मुख आवत बाण लखि, कबहुँ न मोडत अंग ।
ठौर न तजि थिरताभजे, होय प्राण जौ भंग ॥
पर्वतसे टूटी शिला, शिरपर आवत देख ।
सरकत नहिं निज ठौरते, प्राणघात निज लेख ॥
भूमि सन कै काठ पर, जीव घात ना होय ।
लोट पोट कीजे सही, ना पडि रहिये सोय ॥
योग ध्यानमें दृढ़ सदा, शुद्ध हृदय निर्ग्रन्थ ।
आठ पहर जपमें रहे, पावे परम पद पन्थ ॥
धर्म पुराण विचार नित, गुरुको वचन प्रमान ।
शांति सरल अक्रोध चित, इन्द्री दम शम जान ॥

तजि चंचलता भावको, अनहिंसा रह नित्त ।
दृढ समाधिआसनअचल, छितिसो[1] क्षमाहै चित्त ॥
घेरे विपति अनेक जो, आसन तजे न संत ।
दुःख द्वन्द लखि भाग मति, दृढ संकल्प गहंत ॥
शुद्ध अचार बिचार मय, नहिं मनमें मदमान ।
धीरज धर्म्म संतोष गहि, लघु भोजन परमान ॥
राग द्वेष नहिं शत्रु हित, तजे दर्प हंकार ।
शीतउष्ण समदुःख सुख, प्रिय अप्रिय यकसार ॥
मान और अपमान सम, तजे जक्त की आस ।
चाह रहित संशय रहित, हर्ष शोक नहिं तास ॥
अधो दृष्टि मारग चले, चार हाथ महि देख ।
जाग्रत मौन मधुर बचन, मन संकल्प न लेख ॥
पात्र कुपात्र बिचार गृह, भिक्षा दान जो लेत ।
नीच अकर्मी सूम घर, दान महा दुख देत ॥
सदा होय मलपात जिहि, देहि में जो नौ द्वार ।
सूखी ठौर एकन्त लखि, ताको दीजै डार ॥
देह को विग्रह नाम है, रोग दुःख बहु घेर ।
धीरज धरे मनमें सदा, दुख करि काहु न टेर ॥
अपने मन कोई करे, भावे करे न सेव ।
काहूसे नहिं जांच कछु, यही संतको टेव ॥
लाभालाभ जयाजयौ, गंध कुगंध समान ।
रूप कुरूपहिं समलखे, गुरू हरिको गुनगान ॥
संध्या तीनो काल दृढ़, कर्म क्रिया विधिलेख ।
दम्भ छिद्र छल रचे नहिं, प्रभु अनन्य जो देख ॥

---

१ छितिसो – पृथ्वीके समान क्षमावान ।

प्रथम विराग विवेक पुनि, ज्ञान और विज्ञान ।
चारो नयनपुनीत जेहि, पर औगुन मलखान ॥
अपनो औगुन देखते, औरन को गुन दीख ।
निन्दा चुगली सब तजे, यहि सतगुरुकी सीख ॥
यह दुनिया मुर्दार है, तामें लागे स्वान ।
ताते जगसुख साज सब, त्यागत संत सुजान ॥
स्वर्ग आदि जो सुख घने, कीट बीटवत जान ।
मन इन्द्री विपरीति कर, दुखदेही नहिं मान ॥
जगमें गुरू अनेक हैं, सतगुरु सांच टटोल ।
कांचकी ढेर बखेर बहु, गह मणि एक अमोल ॥
संत जौहरी जानसो, ज्ञान नैन निरुआर ।
सार बस्तुको गहि लियो, त्याग्यो सकल असार ॥
सदा काल तप तन दहे, ओर छोर यकसार ।
सो सूरे साधू कहो, उतरे भवनिधिपार ॥
सूरा तो क्षणमें मरे, जरे सती क्षणमांह ।
परम सूर साधू कहो, सदा काल तन दाह ॥
मूरखते मत ज्ञान कह, मौन धारि बहलेहु ।
जेहि पथ विषयनमें चले, चला जान तेहि देहु ॥
उत्तम ज्ञान न आव तेहि, छोड़ि देत निज धर्म्म ।
ताते तेहि न हटाइये, होय अधिक मति भर्म ॥
कोइ कुधर्म्म अज्ञानते, गहि लीना जो संत ।
ज्ञान भये अवगुण लखे, तजिये ताहि तुरंत ॥
अजर अमर लखि आपको, तप दृढ़ ध्यान गहंत ।
देह गेह सब तुच्छ है, जान सुजान कहंत ॥
इंद्री तत्त्व प्रकृतिसे, आतम जाने पार ।

जाप एक पल नहिं छुटै, टुटै न पावै तार ॥
जब जप करते थकि गये, हरि यश गावे सन्त ।
कै निज धर्म पुराण पढ, ऐसो धर्म सिद्धंत ॥
मोहको जब लग त्याग नहीं, तबलग नहीं वैराग ।
जो मनमें वैराग नहिं, तौ समाधि नहिं लाग ॥
दुखको तजि भागे नहीं, सुख नहिं चाहत सोय ।
नेह क्रोध भय त्यागिये, बुद्धिकी थिरता होय ॥
आप जो खैंचकै आपमें, कर्म बटोरे आप ।
विषयते इंद्री खैंचिये,कटे देहको पाप ॥
इन्द्री भोग न पाव जब, मृतक सो रहि जात ।
तब इंद्रियन परे जो, सो आतम दर्शांत ॥
बुद्धिवन्त जे पुरुषवर, बल्कारि इंद्री साध ।
विषयन ध्यावन काम उग, कोह मोहकर बाध ॥
मोहते सुधि बुद्धि नाश है,सुधि बुधि बिन मृतहोय ।
जबै इंद्रियनको वश कियो, तबै शांति कह सोय ॥
शांतिते मन थिरता गहे, मन थिरताते योग ।
योग ध्यानसुध्यानते, ज्ञान गहैं सब लोग ॥
ज्ञानते आतम लाभ है, लाभ न ताहि समान ।
इन्द्री दम नित जाग्रन, तबही बुद्धि थिरान ॥
मनमें जो विषयन भजे, कर्म्म तजे का होय ।
सर्व मनोरथ त्यागिये, बुद्धि शांति तब होय ॥
फाका फुक्क फिक्र नहीं, इंद्रहि जाने रंक ।
सात गांठ कोपीनके, तऊ न साधुको शंक ॥
हरिकी भक्ति कबीर करु, तजि विषया रस चोज ।
बारबार नहिं पाइये, मनुज जन्मकी मौज ॥

कबीर हरीकी भक्ति बिन, धिक जीवन संसार ।
धुवाँकेर धौलाहरा जात न लागे बार ॥
कबीर–जबलग नाता जातिका तबलग भक्ति न होय ।
भक्ति करे कोइ शूरमा, जाति वरण कुल खोय ॥
कबीर–भक्ति निशानी मुक्तिकी, चढे संत सब धाय ।
जिनजिन मनआलस किया, तिनही तिन जहडाय ॥
कबीर–जबलग आशा देहकी, तबलग भक्ति न होय ।
आशा त्यागे हरि भजे, भक्त कहावै सोय ॥
सब इंद्रिनके भोगमें, राग द्वेष तजि देहु ।
काम क्रोध रजगुणहिंते, नेह न कीजे एहु ॥
ठौर पुनीत निहारिके, कर आसन विस्तार ।
अभयशांति ब्रह्मचर्यगहि, इमि समाधिको धार ॥
दृष्टि न इत उत तानिये, दृगमहँ ध्यान लगाय ।
चित्त चंचलको रोकिके, रसरसते बैठाय ॥
दीपशिखा बिन पवनके, इमि योगी मन थीर ।
योग जो करे वैराग युत, सो मेटे भवभीर ॥
ज्ञानी रोगी आर्थिही, जिज्ञासू ये चार ।
सो सबही हरि ध्यावते, ज्ञानी उतरे पार ॥
गोत्र ऊंच अरु नीच जो, पावत है जग जीव ।
आलस नहिं अरु व्याकुली, ताने तमगुण कीव ॥
ताते ज्ञानको गोप है, हिरदयमें अँधियार ।
रजतमको सतपेल जब, होइ ज्ञान इंद्रिद्वार ॥
मृदु शुचि हो गुरु सेइये, ब्रह्मचर्य्य चित लाय ।
अनहिंसा तप दान श्रुत, निग्रह मौन गहाय ॥
कर्मके फलको त्याग है, देह कर्म नहिं त्याग ।

मनकामनाऽहंकार युत, सो राजस दुख भाग ॥
शुभअशुभ नहिं जान जो, किये सहित अभिमान।
हिंसायुत है कर्म्म जो, तामस ताहि बखान ॥
थोरे दिनके कर्म्मको, बहुत अबार लगाय।
आलसमें कारज किये, तामें तम सरसाय ॥
क्षमासमान न तप कोई, सुख नहिं तोष समान।
तृष्णासम नहिं व्याध कोई, धर्म्म न दया समान॥
व्रतके पाँचो अंग हैं, त्यांग न चाह न मोह।
निःसंशय निस्प्रीहता, यह पाँचो विधि जोह ॥
योगके पाँचो अंग हैं, क्षमा अष्काम * बताय।
समदृष्टि आनन्दमय, फिरि अनन्य कहलाय ॥
भक्तिके पाँचो अंग है, नामरटन धुन धार।
सत्य शान्ति अरु प्रेमदृढ़, सुरति न चरनन टार ॥
भक्तिमें तीन प्रकारके प्रेम कहावे संत।
रूप देह अत्यन्त जो, तीनो नाम बदंत ॥
ज्ञानके लक्षण अब कहौं, दश प्रकारको ज्ञान।
नित अक्रोध वैरागयुत, इन्द्रीदमन बखान ॥
दयापाल परमार्थी, क्षमावंत निर्धार।
शोकहीन निर्लोभ कहि, निर्भय चित्त उदार ॥
शम दम विराग विवेक है, ज्ञानके साधन चार।
सात्विकि राजसि तामसी, निर्गुण श्रद्धा सार ॥
अंग योगके पाँच यह, संयम मौन यकन्त।
विषयत्याग आतम निरख, होय दुःखको अन्त ॥

---

* निष्काम।

पाँच अंग विज्ञानके, सत्यबंचन निःशंक ।
सुखदुख सम परमार्थी, लह विवेक निकलंक ॥
औरन औगुन देखि कह, औगुन अपने आहि ।
अपनो औगुन देखिये, जगत ब्रह्म दरसाहि ॥
औरनमें औगुन लखे, निज औगुन नहिं जान ।
अंधकार उरमें वसे, युत जड़ता अज्ञान ॥
जो कछु कहना चाहिये, चौड़े कहो बजाय ।
पीछे दोष न भाषिये, अमृत बचन सुनाय ॥
हृदय तराजू तोलके, तब मुख बाहर कीन ।
मधुरी बानी बोलके, परमारथ चित दीन ॥
यंत्र मंत्र सब त्यागिये, अन्यदेव मति ध्याय ।
जो साधू ऐसा करे, सोई मुक्ति पद पाय ॥
चौदह विद्या सीखके, पूरण पण्डित होइ ।
मूक बने सब त्यागिके, वन्दनीय है सोइ ॥

कबीर भानुप्रकाश अन्तर्गत साधु लक्षण समाप्त

अथ विमल लक्षण वर्णन

प्रथम संसार भली प्रकारसे चलाना, पश्चात् परमार्थका विचार ग्रहण करना । विवेकियोंको सदा ध्यान रखना चाहिये कि, संसार छोड़ परमार्थका ढोंग करना अथवा परमार्थको छोड़कर केवल संसारमें ही निमग्न रहना मूर्खता और दुःखका कारण है, इस हेतु विवेककी चरितार्थता इसीमें है कि, संसार और परमार्थ दोनों मर्यादापूर्वक चलाये जाव ।

संसार छोड़ परमार्थ करने लगे तो खानेको अन्न मिलेगा नहीं, फिर भूखे मरनेवालोंसे परमार्थ क्या हो सकेगा ? अंतमें संसारयात्राके लिये नाना प्रकारके उचित अनुचित व्यवहारोंमें

फँसाना होगा। और इस प्रकार फसे हुए पुरुषका फिर परमार्थमें लगना दुस्तर है।

इसी प्रकारसे परमार्थको छोड़कर केवल संसारमें ही मग्न होनेसे पारलौकिक ज्ञानताके कारण अन्तमें नाना प्रकारके दुखों सहित बारम्बार गर्भकी कठिन यन्त्रणाको सहना होगा। स्वामीके कामको छोड़कर घरमें बैठनेवालेको स्वामीकी ओरसे नाना-प्रकारकी कठोरवाणी और उलाहनाके सहित लोगोंकी निन्दा उठानी पडती है. उसी प्रकारके पारलौकिक (सद्‌गुरुकी आज्ञा) धर्म्म (परमार्थको) छोडकर संसारमें ही मग्न रहनेवालेकी मुक्ति और सुख छूट जावेगा और कठिन यमका दण्ड सहना पडेगा। प्रवृत्तिमें रहनेपर भी ज्ञानद्वारा आसक्ति शक्तिरहित निर्लेप रहता है वही उत्तम है, क्योंकि वह सदा परमपदपर स्थित सारासारके विचारमें संलग्न रहता है।

प्रवृत्तिमें कुशल पुरुष निवृत्ति मार्गको सहजमें ही पूरा कर सकता है; परन्तु प्रवृत्तिमें जो कुशल नहीं है उसको परमार्थमें भी कदापि सफलता नहीं होती। शंकराचार्यादि महात्मागण जो बाल्यावस्थासे ही त्यागी थे उन्हें भी अन्तमें प्रवृत्तिके अनुभवको प्राप्त करनेका यत्न करना पड़ा।

विशेषकर उपदेशकों और धर्म्म गुरुओं और आचार्य्य आदि गुरुकोटिके पुरुषोंको तो अवश्य उभयप्रकारसे दक्ष और अनुभवी होना चाहिये।

इसी हेतुसे उचित है कि, शान्तिसे विचारपूर्वक धर्म्म और नीतिके अनुसार संसार और परमार्थ दोनोंको ही चलाना चाहिये; ऐसा न करनेसे अनन्त दुःखोंका भागी होना पड़ेगा।

जीवोंका स्वभाव अनुकरण करनेका है तो जो मनुष्य शरीरमें आकर भ्रममें भटका उसको क्या कहना ?

साखी—जियत न तरे मुये का तरिहो, जियते जो न तरे ।
गही प्रतीति कीन जिन जासों, नर ताहें मरे ॥
—बीजक ।

मरे पीछेके बनावका विचार भी जीवित अवस्थामें ही कर लेना मनुष्यका कर्तव्य है।

लोकमें प्रत्यक्ष दीख पड़ता है कि, जो सदा जागृत रहता है वह सुखी रहता है और गाफिल दुःख उठाता है। इस कारणसे संसार और परमार्थ उभयमें जो चैतन्य है वही सुखी और सर्वको समाधान करनेको योग्य है।

दोहा—धन्य धन्य तारण तरण, जिन परखा संसार ।
तेई बन्दी छोर हैं, तारण तरण उबार ॥
सारशब्द निर्णय ।

जो जीवित अवस्था सर्व प्रकारसे शक्ति सम्पन्न होनेमें पारखको प्राप्त नहीं होता है वह कालके कठिन आक्रमणके समय क्या कर सकता है, उस समय तो कालके अधीन होकर चौरासीके ही मार्गमें जाना होगा। इस हेतुसे जहाँतक शीघ्रता हो सके पूर्वज महात्मा लोगोंका और सतगुरुके बताये मार्गका बारम्बार विचार कर पारखको प्राप्त कर सत्यपदको प्राप्त होना चाहिये। क्योंकि जीव अनुसरण शील है एकको देखकर दूसरा मार्ग ग्रहण करता है।

गुणवान्, बुद्धिमान्, विद्वान् और सदाचारी लोगोंकी संगति करके उनके सद्गुणोंका ग्रहण करना और अवगुणोंका त्याग करना चाहिये। इस प्रकारसे जो सर्वके गुणकी परीक्षा कर ग्रहण

योग्यको ग्रहण करता है और त्यागने योग्यको त्यागता है; किसीके मनको दुखाता नहीं है, और मनुष्यमात्रके ज्ञान और चित्तकी परीक्षा करता है वही उत्तम पुरुष है, उसीको मनुष्य कहलाना शोभा देता है। सर्व मनुष्योंमें उसकी सामान्य बुद्धि होती है, सर्व प्राणियोंपर एकभावसे दया रखता है, उनके ज्ञानकी तारतम्यतासे उनके द्वारा दुखसुखको प्राप्त हुआ भी सदा उनको दया दृष्टिसे देखकर अनेक प्रकारसे उन्हें अज्ञानके धीसे निकालकर पारख राज्यमें प्राप्त करानेकी शुभ इच्छाको धारण किये रहता है।

बलिहारी तेहि पुरुषकी, परचित परखनहार ॥

-बीजकसा० १३२

इसी प्रकारसे विमल लक्षणका अनन्त स्वरूप है, सदाचारी पारखी जब इन लक्षणोंकी ओर झुकता है तब उसे स्वयम् प्रकाश प्राप्त होता है और नित्य नवीन सुलक्षणको जानता जाता है।

अथ मूर्खलक्षण वर्णन

मूर्ख दो प्रकारके होते हैं—१ मूर्ख, २ पठितमूर्ख इन दोनों प्रकार के मूर्खोंके लक्षण विचित्रप्रकारके कौतूहलसे पूर्ण हैं, इन्हीं लक्षणों द्वारा मनुष्यप्राणी लौकिक और पारलौकिक दुःखोंको प्राप्त होते हैं—इसी कारणसे उनको जानना उन्हें परखना, उनसे अलग रहनेका प्रयत्न करना और इन लक्षणोंकर युक्त प्राणियोंकी सदा उपेक्षा करनेके हेतु दोनोंके लक्षणोंको भिन्न २ लिखता हूँ।

जो प्रपंची है, जिसको आत्मज्ञान नहीं है, जो अज्ञानी है, उसे मूर्ख कहते हैं-यद्यपि ऐसे मूर्खोंके लक्षणका विस्तार बहुत है तथापि यहां संक्षेपसे लिखा जाता है।

अथ मूर्खलक्षण

जिसके उदरसे जन्म लिया ऐसी माताके साथ विरोध करे, और स्त्रीको प्यार करे, सर्व परिवारोंको छोड़ दे, केवल स्त्रीके वश होकर रहे, अपने अन्तर गुप्त बातको उससे कहे उसे मूर्ख जानना। परस्त्रीके साथ प्रेम करे, श्वसुरके घरमें वास करे, नीचकी कन्यासे विवाह करे वह मूर्ख है।

बलवानके साथ गर्व करे, मनमें ममता रखे, बल बिना सत्ता दिखावे, आत्मस्तुति करे, देशमें रहके दुःख भोगे और बाप दादेकी बड़ाई हाँके उसे मूर्ख कहते हैं। बिना कारणके हँसे, अत्यन्त अविवेकी (अर्थात् अवसर बिना बोले हँसे) और बहुतोंका शत्रु हो उसे मूर्ख जानो।

अपने सम्बन्धियों और परिवारके रहते हुए उनकी उपेक्षा-कर परायोंसे मित्रता करे, रात दिन पराया छिद्र ढूँढता रहे वह मूर्ख है।

जहाँ बहुतलोग बैठे हों उनके बीचमें जाकर सोना और परदेशमें जाकर बहुत खाना—ऐसा मूर्ख बिना दूसरा कौन कर सकता है।

मान अपमानकी जिसे समझ न हो, जिसका मन सदा व्यसनके वशमें पड़ा हो उसे मूर्ख जानना।

परायेकी आशासे परिश्रम करना छोडकर जो निरुद्यम होकर आनन्द माने वह मूर्ख है।

मूर्ख घरमें बड़े विवेकी बनते हैं, बहुत बोलकर अपने परिवार और स्त्रियोंमें बकता बनते हैं परन्तु सभामें शर्माते हैं, भयभीत होकर मुखसे बोल नहीं निकाल सकते।

वृद्धोंके निकट ज्ञानीपना प्रकट करे, सात्विक और सरल हृदयके जीवोंसे छल करे, अपनेसे श्रेष्ठके साथ स्नेह करने जावे, और किसीका उपदेश माने नहीं उसे मूर्ख मानना।

एकदम विषयी और निर्लज्ज होकर मर्यादासे बाहर कार्य करता फिरे, रोगी होने पर भी औषध न ग्रहण करे, पथ्य सेवन न करे, जो कुछ सन्मुख आवे उसे त्याग करे नहीं उसे मूर्ख जानो।

अकेले परदेश जावे, परिचय बिना साथ करे और एकदम जाने बूझे बिना किसी बडे नगर (शहर) में जावे यह लक्षण मूर्खमें ही होते हैं।

जहाँ अपमान होता हो वहां बारम्बार जावे, जिसको मान अपमानका कुछ विचार नहीं वह मूर्ख है।

अपने नौकरके धनी होजानेपर उसकी सेवामें रहे और जहाँ मन लगे नहीं वहाँ रहे वह मूर्ख है।

मूर्ख बिना बिचारे तनिक अपराधपर भी दंड देते हैं, सहज सहज बातोंमें कृपणता दिखलाते हैं।

देव पितृको नहीं मानता, शक्ति बिना बडी बडी बातें करना और सदा मूर्खसे अपशब्द बोलना मूर्खका काम है।

घरमें अपनी बड़ी बहादुरी प्रकट करे और बाहर गरीब बन फिरे उसे मूर्ख जानना।

नीचकी मित्रता, परस्त्रीके साथ एकान्तमें संभाषण और मार्ग चलते खाना मूर्ख लक्षण है।

किये उपकारको माने नहीं, उपकारको भी अपकार माने, अपना थोडा किया बहुत बतावे ऐसे कृतघ्नको बुद्धिमान् मूर्ख कहते हैं।

तामसी, आलसी, मनसे कुटिल और अधीर मूर्ख होता है। विद्या वैभव, धन, पुरुषार्थ, बल और मान बिना मिथ्या अभिमान करनेवाला मूर्ख होता है।

लुच्चाई, लफंगई, लबारपना, कुकर्म, कुटिलता, बेगरजी-पना और मलिनता मूर्खका लक्षण है।

दांत, आंख, हाथ, वस्त्र और पग सर्वकाल मैला रखे सो मूर्ख और ऊँचे चढकर वस्त्र पहिरे, बाहर चौतरेपर बहुत बैठ-कर प्रायः नंगे शरीर रहे सो मूर्ख है।

वैधृति, व्यतिपात और कितने कुमुहूर्तोंको अपशकुनकी बात गिने सो मूर्ख है।

क्रोधसे, अभिमानसे और कुबुद्धि से अपना आप ही घात करे ऐसा अव्यवस्थित चित्तवाला मूर्ख है।

अपने सुहृदके साथ खेदके साथ व्यवहार कर, सुख और शांतिका शब्द भी न बोले और नीच जनोंकी स्तुति करे वह मूर्ख है।

अपनेको सर्वप्रकारसे पूर्ण माने, शरणागतको धिक्कारे और लक्ष्मीका भरोसा करे वह मूर्ख है।

पुत्र, कलत्र, और स्त्री अर्थात् सांसारिक विषय वासनाको ही मुख्य मानकर उसीमें मुग्ध होकर जो परमात्माको भूल जावे उसे मूर्ख जानना चाहिये।

"करनी पार उतरनी" "जस करनी तस भरनी"।

दोहा–कबीर कमाई आपनी, कदी न निष्फल जाय।
सात समुद्र आड़ा पडे, मिले अगाऊ धाय॥
–अंगकी साखी।

जो इस भावको नहीं समझता है वह मूर्ख है, पुरुषोंकी अपेक्षा जो स्त्रियोंको विशेष मान दे वह मूर्ख है।

जो दुर्जनके साथ भाषण करे, मर्यादाको त्यागकर और आंख मूंदकर मार्ग चले वह मूर्ख है।

पितर, गुरु, देव, माता, पिता, भ्राता, गुरुभाई, बड़ी बहिन चाची, गुरुपत्नी, गुरुबहिन और स्वामी आदि गुरुजनोंका द्रोह करे वह मूर्ख है।

गंभीरताको छोडकर बोले, आदर बिना बोले, बिना पूछे बोले, निन्द्य वस्तुको अंगीकार करे, मार्ग छोड़कर चले और कुकर्म्मी मित्र करे वह मूर्ख है।

दूसरेको दुखी देखकर हँसे, सुख माने और दूसरेको सुखी देखकर दुख माने, ईर्षा और वैरसे हृदयको जलावे और गई वस्तुका शोक करे वह मूर्ख है।

अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करना जाने नहीं, सदा हँसी ठट्ठा करे और हँसी ठट्ठा करके भी लड उठे उसे मूर्ख जानना।

अपनेसे पूरा हो सके नहीं ऐसी शर्त करे, विना कामके ही बडबड करे, बोलनेकी रीति जाने नहीं उसे मूर्ख जानना।

वस्त्र शस्त्र विना ऊँचे स्थल पर जा बैठे और अपने गोत्रका विश्वास घात करे वह मूर्ख है।

चोरको अपनी पहचान बतलाये, दृष्टि पडी हुई वस्तु मांगे क्रोधमें अपना अहित करे वह मूर्ख है।

नीच लोगोंकी संगति करे, घमंडके साथ बात करे, बायें हाथसे पानी पीये वह मूर्ख है।

समर्थके साथ मत्सरता करे, अलभ्य वस्तुकी आशा करे और अपनेही घरमें चोरी करे वह मूर्ख है।

परमात्मा विना मनुष्यपर विश्वास लावे और निरर्थक अपनी आयु नष्ट करे वह मूर्ख है।

"संसार दुःखसे भरा है" ऐसा जानने पर भी देवोंको गाली दें और मित्रोंको भला बुरा कहे वह मूर्ख है।

अल्प अन्यायके लिये भी क्षमा न करे, सदा बरछीके नोक पर भी रहे और विश्वासघात करे उसे मूर्ख जानो।

समर्थके साथ विरोध करे, जनमंडली जिसको देखकर क्रोधित हो, घडीमें भला घडीमें बुरा हो उसे मूर्ख जानो।

पुराने सेवकोंको छुडाकर नया सेवक रखे और जिसकी सभा नायक विना हो वह मूर्ख है।

अनीतिसे धन प्राप्त करे, न्यायनीति और धर्मको छोड दे तथा साथके आदमियोंको त्याग दे वह मूर्ख है।

अपना पैसा दूसरेके पास रखे, दूसरेका अपने पास रखे, नीचलोगोंके साथ व्यवहार करे वह मूर्ख है।

अतीतका अंत ढूढे, कुग्राममें जाकर वास करे और हमेशा चिन्तामें रहे सो मूर्ख है।

दो जन बात करते हों वहाँ जाकर बैठे और दोनों हाथसे शिर खुजलावे वह मूर्ख है।

पानीमें थूके, पगसे पग खुजलावे, नीच मनुष्यकी सेवा करे वह मूर्ख है।

स्त्री और बालकको मुँह चढावे अर्थात् निडर करे, परस्त्रीके साथ कलह करे, बहुत कालकी मर्यादाको हलकी करे, गुंगे जीवको कारण विना मारे और मूर्खसे मैत्री करे वह मूर्ख है।

दोकी लडाई झगडेको खड़ा होकर देखे और झूठी बातको सच्ची और सच्चीको झूठी माने वह मूर्ख है।

लक्ष्मी मिलनेपर पहली पहचान भूल जावे और पूज्य वर्गोंपर हुकूमत चलावे वह मूर्ख है।

अपने स्वार्थ तक नम्रता दिखलावे, स्वार्थ निकले पीछे बेपरवाह होजावे और उपकार करनेवाला कार्य्य न करे वह मूर्ख है।

जो अक्षर छोडकर पढे, पुस्तककी ओर दृष्टि न रखे और अपनेको बहुत बुद्धिमान् प्रकट करे वह मूर्ख है।

स्वयम् कभी पुस्तक पाठ करे नहीं, दूसरोंको पाठ करने दे नहीं और पुस्तकोंको बांधकर रखे वह महामूर्ख है।

इस प्रकारसे संक्षेपमें मूर्खोंका लक्षण वर्णन किया, अपनी हितकी कामना करनेवाला पुरुष इनका विचार कर सदा ही इन दुर्गुणोंसे बचनेका प्रयत्न करे, जिससे मूर्खोंकी पंक्तिसे निकलकर उत्तमोंकी गिनतीमें आवे।

अथ पठित मूर्खका लक्षण वर्णन

पीछे मूर्खका लक्षण वर्णन कर आये, अब उनका लक्षण वर्णन करूँगा कि, जो बुद्धिमान् और पढ-लिखकर भी मूर्ख हैं। अर्थात् विद्वान् होनेपर भी जिनमें मूर्खता होती है उन्हें पठितमूर्ख, कहते हैं।

बहुत शास्त्र और ग्रन्थोंका पठन पाठन और श्रवण किया हो, ब्रह्मज्ञानकी वार्ता करे, परन्तु झूठी आशा और मिथ्या अभिमानका त्याग न करे ऐसे विद्वान्‌को तोतेके ज्ञानसमान अज्ञानी मूर्ख जानना।

मुक्त पुरुषोंके चरित्रको बारम्बार मुखसे कहता है परन्तु उनके सदाचारका अनुकरण करता नहीं और स्वधर्मके साधनोंको तुच्छ दृष्टिसे देखता है तथा औरोंको उनके आचरणसे हटाता हो उसे पढ़ा हुआ मूर्ख समझना।

अपने ज्ञातापनके अभिमानसे सर्वमें दोष लगाता है, प्राणी मात्रमें छिद्रान्वेषण किया करता है, उसके शिष्य अथवा अधीनस्थ मनुष्य उसकी आज्ञासे बाहर चलनेवाले हों, जिसके बोलनेसे दूसरोंका दिल दुखाता हो, ऐसे पंडितको पठितमूर्ख समझो।

सम्पूर्ण पुस्तक बांचे बिना ग्रन्थको तथा ग्रन्थकारको दूषण देना, ग्रन्थके गुणको भी अवगुण ही समझना, थोडे अवगुणको देखकर संपूर्ण अवगुण किसीमें कल्पना करलेना पठितमूर्खोंके अतिरिक्त दूसरे किससे हो सकता है ?

सदाचार और सल्लक्षणोंसे हास्य मानकर, सदाचारी और सल्लक्षण युक्त पुरुषोंकी निन्दा करता है, सदा उनको नीचा-दिखानेकी चिन्तामें लगा रहता है, वह जो कुछ नीति अथवा न्याय अपने दोषोंको छिपानेके लिये करता है सब छल छिद्रसे भरे होते हैं।

मैं ज्ञानी हूँ, सर्वज्ञाता हूँ ऐसा मिथ्याभिमान रखकर प्रत्येक कार्य्योंमें हाथ डाल देता है परन्तु कार्य्य सिद्ध न होनेपर मिथ्या क्रोधके वश हो जाता है। लोगोंके अधिकारका विचार किये बिना उनसे बोलनेका साहस करता है और बचन जो बोलता है वह भी कठोर।

बहुश्रुतपनके कारण वक्ताका सभामें अपमान करता है और मिथ्या बकवाद करता है।

जिस बातके लिये दूसरोंको दूषित कहता वही बात अपनेमें होते हुए भी उसे जान नहीं सकता।

अभ्यास द्वारा सर्व विद्या प्राप्त कर लेता है परन्तु उसके द्वारा जगतका कुछ उपकार नहीं कर सकता, किसीका उससे माधान नहीं होता।

जिस प्रकार हाथी स्पर्श विषयमें लुब्ध होकर और भवँरा गन्धमें लुब्ध होकर बन्धनको प्राप्त होता है उसी प्रकार पठित-मूर्ख संसारमें फँसता है।

वह स्त्रियोंमें लुब्ध होता है, उन्हींका संग करता है, उन्हींका अपनी वाणी द्वारा निरूपण करता है और नीच काममें प्रवृत्त रहता है।

जिससे उसके मानकी हानि होती रहती है उसीको दृढ़ रखता है, और अपनेको शरीर समझता हुआ सदा उसीके लालन पालनमें लगा रहता है।

सद्गुरु परमात्माकी स्तुतिको छोड़कर सत्य धर्म्म ग्रन्थोंका लिखना और रचना छोड़कर सांसारिक मनुष्योंकी प्रशंसा करता है उनकी मिथ्या बड़ाई करता है, उनके विषयमें प्रशंसा करता है, उनके विषयमें कविता बनाता है, जिससे कुछ सांसारिक लाभ हो उसीकी बडाई करता है, जो दृष्टिगोचर होता है उसीको सत्य जानता है ऐसा जो विद्वान हो वह मूर्ख ही कहलाने योग्य है।

स्त्रियोंके अवयवका वर्णन करता है, शृङ्गार रसकी कवितामें अपना समय बिताता है, नाटकादिके हावभावके वर्णन करनेमें अपनी लेखनीको घिसता है वह ईश्वरको भूल जाता है।

वैभवको प्राप्त हो सर्व प्राणीमात्रको तुच्छ समझता है और स्वयम् नास्तिक बनता है।

व्युत्पन्न, वैरागी, ब्रह्मज्ञानी, संन्यासी, साधु, महंत आदि उच्च उपाधिको धारण करनेपर भी प्राकृत जनोंको व्यापार धन्धाके भविष्य कहनेका काम उठाता है वह महामूर्ख है और उसे दम्भी विषयाभिलाषी पठितमूर्खके पदको प्राप्त हुआ जानना।

जो किसीकी भी पूरी बातको सुने विना उसके गुणदोषमें छिद्र ढूँढने लगता है और दूसरेकी उन्नति देख नहीं सकता है ऐसे दूषित विद्वान्‌को पठितमूर्ख कहते हैं।

भक्तिके साधन, वैराग्य और भजन विना भक्त और शम-दमादि साधन विना ब्रह्मज्ञानी, और सत्यासत्यकी परीक्षा विना अपनेको केवल मुखसे ही भक्त, ब्रह्मज्ञानी और पारखी कहलानेकी कामनावाले पठित पुरुषोंको मूर्ख कहा जाता है।

स्वधर्मके नित्य नैमित्तिक कर्म्मोंमें श्रद्धाहीन, ऊंचकुलमें भी जन्म धारण कर नीच कर्म्मोंमें प्रवृत्त होनेवाला विद्वान मूर्ख है, उसका आदर करनेवाला यदि नीच पुरुष भी हो तो उसकी मिथ्या प्रशंसा करता है और पीठ पीछे उसकी निन्दा करता है उसे पठितमूर्ख जानो।

"मुखपर एक और पीठ पीछे दूसरा" ऐसी जिसकी आदत हो, बोलनेकी बात अलग और करनेकी अलग हो, संसारमें अत्यन्त प्रवृत्ति करने पर भी परमार्थको धिक्कारे और अपने वचनको सिद्ध करनेके लिये अपने ज्ञातव्यका आश्रय ले। सांची बातको किनारे छोडकर लोगोंकी रूचिके अनुसार बात करे, ऐसे अपने जीवनको पराधीन और मृतक करनेवाले विद्वान को पठितमूर्ख जानना।

जो लोगोंको दिखलानेके लिये दम्भ किया करता है, अकर्तव्यको कर्तव्य मानकर उसमें प्रवृत्त होता है, मनमें सीधा और योग्य-मार्गको जानते हुए भी लोभ (लालच) से, अथवा मान-बडाईकी इच्छा, या किसी भी परके पक्षपातसे सत्य त्याग करके टेढे रस्ते चलता है उसे पारखी महामूर्ख और ज्ञानियोंकी सभासे बाहर समझते हैं, यदि वह उच्च आसन पर भी बैठा हो तो क्या?

रातदिन उत्तम उत्तम ग्रन्थोंका श्रवण करते हुये भी अपना अवगुण त्याग नहीं करता है, अपना हित आप समझता नहीं है, तत्त्वनिरूपणके श्रवण मननको जहाँ उत्तम मनुष्य बैठते हों उनकी मसखरी करता हो, वह मिथ्याज्ञानी कदापि अपना हित नहीं कर सकता।

अपना शिष्य अनधिकारी होकर अपमान करने लगे तब भी उसकी आशा न छोडे, ग्रन्थोंको सुनते, या विचारते अथवा किसीके मुखसे उपदेश द्वारा अपने कर्तव्यकी खामी (कसर) कुछ मालूम हो तो क्रोधित होकर गडबड़ करने लगे तो यदि वह लोगोंमें बहुत बुद्धिमान् भी प्रसिद्ध हो तो भी उसे महामूर्ख जानना।

वैभवमें मग्न होकर सतगुरुकी उपेक्षा करे और अपनी गुरुपरम्पराको याद करे उसे भी मूर्ख जानना; यद्यपि वह वैभवप्रतापसे जगतमें बुद्धिमान् कहलाता हो।

जो ज्ञानकी बात कहकर धन जमा करता है, कृपणके समान धन भोगता है, धनके लिये ही परमार्थकी बात करता है, स्वयम् तो कर सकता नहीं और दूसरोंको वही बातें सिखाता और ब्रह्मज्ञानका उपयोग अनधिकारी विषयलम्पट लोगोंके समक्ष करता हो, ऐसा महंत, गोस्वामी और साधु संत भक्तिमार्गको भ्रष्टकर पक्षपात द्वारा वैर विरोध बढ़ानेवाला है।

परिवार त्यागकर साधु वेष धारण कर लेनेवालोंको संसार तो छूट ही गया और इधर परमार्थका भी साधन नहीं हो सका ऐसा जो धर्म्ममर्यादाको भ्रष्ट करनेवाला हो वह धर्म्मविरोधी मूर्ख कहलाता है।

जिस धर्म्मका स्वांग बनाया हो, उस धर्म्मके ऊपर पड़ते हुए विधर्मियोंके आक्रमणकी उपेक्षा कर जो स्वमान मर्यादाकी मरम्मतमें लगा रहे उस धर्म्मविध्वंसी मिथ्या स्वांगधारीको मूर्ख समझना चाहिये।

स्वधर्म्मकी जिन बातों और कर्मोंसे हांसी होती हो, उन कर्मों और बातोंमें प्रकृत होकर, स्वधर्म्मके सिद्धान्तको न जाननेवाले, अथवा उसकी निन्दाकरनेवाले धर्म्म दूषियोंसे जो मेल मिलाप बढ़ावे वह धर्म्मघाती मूर्ख है।

इस प्रकार संसारमें भले कहलाते हुए भी मूर्खताके ही वनमें भटकनेवालोंका संक्षेपसे वर्णन किया। सज्जन जन इसे विचारें और आत्मसुधारके मार्गको पक्षपात रहित होकर ग्रहण करें।

इति श्रीधर्म्मबोध प्रथम भाग समाप्त

सत्यसुकृत, आदअदली, अजर अचिन्त, पुरुष, मुनींद्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतायन, धनीधर्मदास चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवलनाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रगट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानामकी दया, वंश-ब्यालीसकी दया ।

★

अथ श्रीबोधसागरे

कमालबोध प्रारम्भः

★

एकत्रिंशस्तरङ्गः

चौपाई

शाह सिकन्दर दिल्ली सुलताना। बैठे तख्त करे रजधाना ॥
बहुतेक दिवस आनन्दमें गयऊ। एते कायाको बेदन भयऊ ॥
देह अग्नि उठी अधिकाई। रैन दिवस शाहा सुधि नाहीं ॥
बहुतेक इलम कियो सुलताना। फेर औलिया सिद्ध मुलाना ॥
कोई विधि जलन दूर नहिं जाई। दिन दिन उठी चले अधिकाई ॥

शाहसिकन्दर प्रतिज्ञा

दोहा–दीन दुनीका मैं धनी, मेरा जाय प्रान ।
मेरा बेदन जो हरै, मनवांछित पावे दान ॥
ऐसा कोई औलिया नाहीं । मेरे तनकी तपन बुझाहीं ॥

वजीर वचन

कहै वजीर सुनो सुलताना । काशीमें एक फकीर सयाना ॥
वहां एक हिंदू फकीर रहाई । चौदहसौ वरष जिनउमर धराई ॥
सब हिन्दू कदमों पै जाहीं । सब हिन्दूके पीर कहाहीं ॥
उनको चर्णारविन्द धरो तुम जाई। दर्शन करत जलन मिट जाई ॥
रामानन्द कहैं सुनी बड़ाई । शाह सवारी काशी आई ॥
दोहा–आय दुनीके बादशाह, सब संगहि दललाय ।
जलन मिटनके कारने, कदमों पहुँचे जाय ॥

चौपाई

भयो प्रभात जलन अधिकाया। जब रामानंद कहै दर्शन धाया॥
शाह सिकन्दर दर्शन आये । सबही अमीर सङ्ग चलिधाये ॥
आये मण्डप आये सुलताना । रामानंद दिल रहै खिसियाना ॥
शाहको अग्नि उठी अधिकाई । भये विकल सही ना जाई ॥
त्राहि त्राहि तब कीन पुकारा । रामानन्द तब मुखफेरि सिधारा॥
देखि दशा भई अति क्रोधा । कहै वजीर सुनो सब योधा ॥
देखो इस काफिरकी गुमराही । चढ़त क्रोध मोंहि रह्योनजाही ॥
दीन दुनीके शाह सुलताना । जिनको नमै सकल जहाना ॥
सो काफिरके कदमो आवे । देखत तेहि काफिरमुँह फिरावे ॥
ऐसो काल चढ्यो बलवंडा । नफरके घटमें भयो परचण्डा ॥
ऐसो तेग चलायो जायी । काट्यो शिरधड दूर गिरायी ॥
ताह अवसर अचरजअस भयऊ। देखत दुनी अचम्भो ठयऊ ॥

कटे अङ्गसों धार बहायी। आधा रक्त अरु दूध चलाई ॥
शाह सिकंदर अन्देशा माने। भेद न जाने मनमांहि तवाने ॥
स्वामीके तन चलत दुइ धारी। हाहाकरै तब दुनिया सारी ॥
दोहा-गुरु रामानन्दहिं मारिया, काशी नगर मँझार।
शाहके वेदन बहु बढ्यो, त्रास भई संसार ॥
यक तो वेदनको दुखभारी। दुसरे अचरज परी अगारी ॥
कहैं सिकन्दर मन अकुलायी। ऐसा कोई औलिया नाहीं ॥
हमरे तनको तपन बुझावे। बहुरी अचरज को भेद बतावे ॥
सबही कहै सुनों सुलताना। इनका शिष्य यक अहै सयाना ॥
मरल गौ कइ बार जियाया। बहुतक अचरजतिनदिखलाया ॥
रामानन्दहु ते अधिक बड़ाई। सत्यकबीर कहैं सब ताई ॥
तिनको दरशन करिये शाहा। सो पुनि कहिहैं अचरजको राहा ॥
सुनत वचन सिकंदर भाई। कीन दरश कबीर पहँ जाई ॥
शाह सिकंदर दर्शन आये। मिटिगयीतपनसबदुःखमिटाये ॥
जबही शाह कियो दीदारा। मिटि ग... तपनअग्निकीझारा ॥
कहै शाह तुम सच्चे साई। तुमरे दरश तपन बुझाई ॥
दोहा-जबही तपन बुझायउ, सतगुरु दीनदयाल।
भइ प्रतीत तब शाहको, भयो शिष्य तेहि बाल ॥

चौपाई

भयमुरीद जुलहाके आयी। तब हा-जुलकरंन-नाम धराई ॥
ज्ञान ध्यान चरचा बहु कीन्हा। शाहसिकंदर शरणजब लीन्हा ॥

१-इस शब्दके ऊपर बहुत विचार किया, किन्तु शुद्धशब्दका पता नहीं लगा जुलकरन न तो फारसी या अरबी शब्द है न संस्कृत या हिन्दी। कमालबोधकी एकही प्रति मेरे पास है जो सम्मत् १९११ का लिखा हुआ है। विशेषता यह है कि यह पुस्तक खास पं श्री पाक नाम साहबके समयमें उन्हींके हुजूरमें रहनेवाले एक संतकीलिखी हुई है तथापि इसमें इतनी अशुद्धियां हैं कि एक २ चौपाईको पढनेमें दो दो मिनट लग जाता है तथापि हजारों सन्देह सहित कापी लिखी जाती हैं।

सतहत्तर लाखसो बीरा लीन्हा । सबहीं जीव अमरकर दीन्हा ॥
सतहत्तरलाखजिवलोकसिधाने । अपने अवगुनसबगये हिराने ॥
तब सिकंदर यक विनती लावा । मिहर गुरुकरि ताहि लखावा ॥
अहो साहिबमोहिंग्रन्थ लखाई । बाचे ग्रन्थ दिल समझाई ॥
तब सद्गुरु हुकुम अस कीना । जस मांग्योशाहतस तेहिदीना॥
नवी सिन्दको लेहु बुलायी । कागजकमलसबसाथलिवायी ॥
शाह सिकन्दर तुरत बुलाये । सवाला खसोतेही बेर आये ॥
सवालाख देह बीर तब कीना । सोउ सिकन्दर सब सुधिलीना॥
तनमनधन जब अर्पण कीना । शिरके साट साहब चीन्हा ॥
फिरे शाह जब दिल्ली आये । काजी मुल्ला सब सुनि पाये ॥
शेखतकी रहे उनपर पीरा । सब मिलि गये उनके तीरा ॥
सब मिल कहैं सुनो मम पीरा । शाहसिकंदर कसभये अधीरा ॥
काशी माहिं गये जब शाहा । कबीरहि कीन्ह गुरू नरनाहा ॥
सुतन तकी बहुते रिसियाना । का तुम कहौअसबातबिराना ॥
ऐसा कैसा ख्याल खिलायो । कैसे मोरा मुरीद फिरायो ॥
चलो जाइये शाह दरबारा । सब मिलि पूछें ज्ञानविचारा ॥
जुलहा मुरीद कससो भयऊ । सो सब पूछें तिसका भेऊ ॥
केहि कारण मुरीद सो हूआ । काजीमुल्ला सब कहँ मूआ ॥
सब मिलि आये भरे दरबारा । बैठे तख्तशाह सरदारा ॥
तिन कहँ आदरशाहभलदीन्हा । तिन पुनि प्रश्न पूछिसो लीन्हा॥
कहो शाह तुम कहाँ मत पाये । कैसे अपना ईस्म फिराये ॥
काफिर कहै मुरीदकस तुम हुये । काजीमुल्ला सब कहँ मुये ॥
दीनके घर कहँ टोटा भाई । दीनका कर आदिसो आई ॥
सो तुम कैसे दियो मिटायी । चार बिहिस्त अल्लाह फरमायी॥

---

१ नाम

इनकूँ तजि आगे कहँ जाओ । चार मुकाम लाहूत सो भाओ ॥
दीन इस्लाम असल दरसायो । सो तुम छोड़ि कहँ भटका खायो ॥
दीन दुनीके तुम सरदारा । कैसे मेट्यो दीन तुम्हारा ॥
खुदाके अहदी काजी कहावैं । दीन इसलामको राह बतावैं ॥
दीन इसलाम असल है भाई । और सबे जग कुफर चलाई ॥

सिकन्दर वचन

सुनत सिकन्दर उत्तर दीन्हा । सबको मन अचरज असभीना ॥
भूले काजी भूले मुलाना । तिनहू भूले लाये फरमाना ॥
दीनका घर दूर है भाई । बिन जाने तुम असल ठहराई ॥
किसने बिहिस्त बैकुण्ठ बनाया । दीनका असल किसने फरमाया ॥

दोहा—काजी मुल्ला भूलिया, भरमें सकल जहान ।
मुहम्मद भूले संदेशसे, सोई लाये फरमान ॥

चौपाई

एते सतगुरु दिल्ली आये । शाहसिकन्दर बहुत सुखपाये ॥
जमुना बिच है महल मुबारक । बैठे पीर जहँ होइके फारक ॥
काजी मुल्लाको लिये बुलाये । शेखतकी तुरत चलि आये ॥

शेखतकी वचन

कहशेखतकी जुल्म तुम कीना । मुरीद हमार फिरायके लीन्हा ॥
काह कियो सुनो मति धीरा । जुलम किया तुम दास कबीरा ॥
कौन इलम शाहको दिखलायी । कौन सुधि तुम नाम सुनायी ॥

कबीर वचन

मियाँ हम इलम फकीरी बोलें । समरथ नाम लिये जग डोलें ॥
हम दुर्वेश हैं दर्प दिवाना । सतकी चाल चलें जग जाना ॥

काजीमुल्ला वचन

निराकार जिन कुरान बखाना । नूर जो उतर्यो सब जग जाना ॥
कही खुदाकी और निनारा । इसका हमको कहो विचारा ॥

कबीर वचन

निराकार है खुदाका कीया। इनको तीन लोकसों दीया ॥
इनहीं रचे जो वेद कुराना। विहिस्त वैकुण्ठ इनहीं जो ठाना॥
दोहा—निराकार निर्गुन कहँ, रांचि रहे संसार।
वेद कुरान इन्हीं किये, साहिब नूर निनार ॥

काजी मुल्ला वचन

ज्ञान कियेसे बनि नहिं आयी। अपनी अजमत देहु दिखाई ॥
अजमतसे हम सच करि माने। नहिं तो करहू झूठ अभिमाने ॥
दीनका घर सब झूठ परायी। तो पुनि इलम तुम्हार चलायी॥
जो कबु इलम हमार चलायी। तो हम तुमको लेब मिलायी ॥
दोहा—हमारे दिल ऐसी लगी, फिराय सिकन्दर साय।
सखुन आदिका मेटिया, सब दिन दिये उठाय ॥
हमारे दिल ऐसी लगी, तुम कच्चे प्याला पिलाय।
कहे शेखतकी कबीरसे, फिराय सिकंदर साय ॥

कबीर वचन

मियाँजी आवे तो खावे सही, हम केहि बसैं तन माहिं।
तुम खाये सकल जहानको, तौ भी छक्के नाहिं ॥
एक मुर्दा यमुना में आया। सो जुलकरनके नजर पराया ॥
देखहु यारो उसकी जिंदगानी। कहा देखा इन जगमें आनी ॥
ओछी उमर यह कहँ पाई। सुरत शुभान कछु कहा न जाई ॥
इसका जीव गया किहि ठायी। काजी मुल्ला कहो समझायी ॥
शेखतकीको आगम नाहीं। हमारे पुत्र कमानेको जाहीं ॥
दुर भोमको दीन ध्याना। उलटा नाव यमुना बहराना ॥
डूबे जीव जो एक हजारा। मुरदा बहे जायँ असरारा ॥

देखो पीर किताब कुराना। हम करें तुमको सन्माना ॥
यहि मुर्दाको लेहु हँकराई। हम तब रहें तुव शरनाई ॥
जो यह मुर्दा आवे नाहीं। तब तुम कर सब झूठ बड़ाई ॥
सखुन तीन काजी हँकारा। मुरदा बहाजाय मझधारा ॥
दिखाओ कबीर इलम फकीरी। यहि मुरदाको लेहु हँकारी ॥

काजीमुल्ला वचन

हम सब धरे तुम्हारे पाई। जो यह मुरदा लेहु बुलाई ॥
जो यह मुर्दा आवे नाहीं। तो तुम झूठे शाह भरमाई ॥
कुदरत कमालकहिकबीर बुलावा। मुरदादौरीसमरथचरणसमावा॥
काजीमुल्ला देखें ठाडे। मुर्दासे जिन्दा करि डारे ॥
सतगुरु अंकमिलाप जब कीना। इलम फकीरी उसको दीना ॥

दोहा-मुरदासों जिन्दा किया, दिलासों दीन मलाल।
शाह परतीत दिखाइया, उत्पन्न दास कमाल ॥

चौपाई

शेखतकी हरषे मन माई। लाय कमाली भेट चढ़ाई ॥
दोऊ सुत अहै तुम्हारी शरना। तुमसे मिटे जरा और मरना ॥
शेखतकी तब शीश नवावा। बेहद साहब सच हम पावा ॥

कबीर वचन

जाहु कमाल कोइमुल्क चेताओ। चौरासीसे जीव मुक्ताओ ॥
चले कमाल तब शीश नवाई। अहमदाबाद तब पहुँचे आई ॥
दरियाखान पठानहिं नामा। तहाँ जाय पुनि कीन्ह मुकामा॥
साठ मुरीद किये तेहि ठाईं। अधिक प्रीति पठान जनाई ॥
तन मनसे बहु सेवा कीन्हा। इलम फकीरी उसको दीना ॥

कमाल वचन

सुनो दरियाखान सखुन हमारा। इलम फकीरी सदा बड़भारा ॥

जो तुम चाल चलौ भरपूरी । तब तुम पहुँचो पुरुष हुजूरी ॥
कबहूँ तुम जो चूको चेला । शिकस्त करे तब तुमको काला ॥
जो तुम चेला चूक करो जाई । तब तुम परिहो चौरासी माई ॥
इतनी सिखावन उसको दीया । दिन सोलह उसके घर रहिया ॥

दोहा-इल्म फकीरी अलमस्ता दिवाना, कीना एक उपाय ।
एक पाव बांधे वेदको, दूजे कितेब बँधाय ॥

चौपाई

वेद कितेब जो बडयारा । चले जात हैं नगर मँझारा ॥
मध्य चौकमें खड़े भय जाई । प्रानी बहुत तमाशे आई ॥
बायां पाँव हिन्दू दिखलावे । बाँचे वेद वैकुण्ठ सो पावे ॥
दहिना पाँव दीन दिखलावे । पढ़ै कुरान बिहिश्त को जावे ॥
वेद कितेब दोऊ बड़ भारी । त्राहि २ भयी दुनियाँ सारी ॥
दोनों दीन पाँव तले दीना । ऐसा है कोई अलमस्त नबीना ॥
चले सकल पुनि दिया पुकारी । जाय खड़े भये शाह दरबारी ॥

दोहा-तुमहो अहमद शाहडा, अचरज देखो आय ।
वेद कितेब पांवों तले, दोऊ दीन मिटाय ॥

चौपाई

कोपे अहमद आप सुलताना । जड़ो जँजीर फकीर दिवाना ॥
जड़ो जँजीर मुहकमकर ऐसी । ऊपर रहो मुबकिल दशबीसी ॥
रहै न सयानी भये विनाया । बाहर चौकमें खड़ा दिवाना ॥
सोई जोड़ा फिर दिखलावे । दोनों दीनको फिर समुझावे ॥
फिर जाय सब कीन पुकारा । हैं जिन्दा खड़ा चौक निधारा ॥
कहे शाह मुबकिलसे तबही । कैसे गया जिन्द पुनि जबही ॥

मुबकिल वचन

कहे मुबकिल सुनु सुलताना । ऐसी अजमत हम नहिं जाना ॥

सात बेर जो जडे जँजीरा । बाहर चौकमें खड़ा फकीरा ॥

अहमदशाह वचन

अबकी लाय जमींमें गाढो । पांच २ ईंटा सब मिलि मारो ॥
जो कोई दया करे उसपर जाई । उसके घरको देहु जलाई ॥

दोहा–लाहे लागि कमालको, ऊपर ईंटा अपार ।
तन मनकी कछु सुधि नहीं, इलम फकीरी सार ॥

चौपाई

दरियाखान कचहरी जावे । आगू पड़ी भीड़ दिखलावे ॥
कहे मुबकिल सुनो दरियाई । कमालके ऊपर है कठिनाई ॥
इलम फकीरी सैल तुम पाई । मारो ईंटा फकीरके ताई ॥
जो तुम इनपर ईंटा न डारो । तब तुम सारी खिदमत हारो ॥
मारो ईंटा होयकर राजी । नहिं तो तुमपर होय शाहनराजी ॥

दरियाखान वचन

कौन उपाय करों मैं सांई । कैसे मुरशिदपर ईंट चलाई ॥
मेरी इलम फकीरी जाई । जो मैं इनपर गद कर जाई ॥
तब हजरत उसपर बहुत रिसांई । तबहीं फूल एक लीन उठाई ॥
दरियाखान विवेक निधाना । भेद फूल मन करे तिवाना ॥
जो फूलै हम मरिहौं जाई । मेरो जन्म भ्रष्ट होय जाई ॥
देखि सुनावन शाह रिसाना । कठिन बोध प्रकट दिखलाना ॥
देखि क्रोध दरिया जब लीना । पखुरी एक फूल सो छीना ॥
सोई पखुरी गुरुपै चलिया । लागत पखुरी अचेत ह्वै परिया ॥
दरियाखान दौरि ढिग गयऊ । पहर एक तक विन्ती लयऊ ॥
पहर एक महँ चेत तब आवा । दरियाखान तब अरज सुनावा ॥
सुनहु सत गुरु विनती मोरी । इतनी ईंटा परी तुम धोरी ॥
इतनी ईंटा परी तुम संगा । तब तुम काहे न मोर्‍यो अंगा ॥
हमतो फूलन पखुरी डारा । ताते तुम होय पड़े बेकरारा ॥

दोहा–याका मरम पाया नहीं, सतगुरु कहो समुझाय ।
एतिक ईटा मारसे, तुम कहँ ना विकलाय ॥
एकै पखुरी फूलसे; लागी इतनी चोट ।
होय विकल धरनी गिरे, हो गये लोटम पोट ॥

कमाल वचन

बिना भेद उन ईटा डारा । तुमतो हमको चीन्हके मारा ॥
मोंसे इलम फकीरी पाई । ताते तुम मोकूं मारा भाई ॥
यह दुनिया है कालका चारा । इसपर चले न अमल हमारा ॥
ताते देह छांडिहमभये नियारे । डारे कोटिक ईट अपारे ॥
देखत तुमको देह समोये । शिष्य को दर्शनदेहमहँ होये ॥
भली कीन तुम मोको मारा । अपनी इलम फकीरी हारा ॥
बहुतेक ज्ञान हम तोहिं सुझावा । तौहू तुम मम मरम न पावा ॥
दोहा–इलम फकीरी चूकी तेरी, सुनहु खान पठान ।
दोजख जाहु मौजमें, यह सतगुरुका फरमान ॥

दरियाखान वचन

सब दुनिया खोजत कहँ जाई । मुझको कौने दोजख फरमाई ॥

कमाल वचन

भूत खानिमें रहो समाई । सब जग जाने तेरे ताई ॥
जानि बूझि तुम मोको मारा । सब भूतनका बनो सरदारा ॥
सब भूतनमें करो बादशाही । सबमें तेरी चले दुहाई ॥
एती खबर शाह सुन पावा । जिन्दा[1]कहँशिरकाटनफरमावा ॥
कहे दरियाखान सुनो सुलताना । जिन्दानहींकोईऔलियाजाना ॥
यह सुनि शाह बहुत रिसाया । तुरतहि पोस्त[2] काढि मँगाया ॥

१–कमाल साहब उस समय जिन्दा वेषमें थे । जिन्दा वेषका हाल देखो ग्रन्थ जिन्दा बोध आगम ज्ञानमें : २–चमड़ा ।

जबहीं छाती चीरन लागे। शाही महलमें आग तब जागे॥
पड़े अहमद जो बहुत ठहेली। शाहकी देह अग्नि तब भेली॥
शाह कहे चलु जिन्दा पासा। जिन्दा चले तब काशी वासा॥
जिन्दा गया काशी अस्थाना। सुनी शाह मनही पछताना॥
दरियाखान कहँ संग लिवाई। चला शाह काशी कहँ जाई॥
हस्ती घोड़ा लिये मँगाई। जर जौहर बहु माल भराई॥
खेचर ऊंट हाथी बहु लीना। गिनत बरे नहिं आवे मीना॥
चले अहमद आप सुलताना। दुनिया संग उठि चली निदाना॥
एक मास दिन सत्ताइस जाई। अहमद पहुँचे काशी माई॥
कमाल पहल गुरु पहँ आये। सतगुरु सन्मुख माथ नवाये॥
आये अहमद सतगुरु पासा। बारम्बार खैंचे ऊँच उसासा॥
जर जवाहिर माल उतारा। ले सतगुरुके चरणों धारा॥
बहुत कहू कछु बरनी न जाई। हमही पूठ नहिं दीन गुसांई॥
साहब कमाल गुसा करि आये। हमरे तनकूं अगिन लगाये॥
यह सुनि सतगुरु बहुत रिसाये। तब कमालको वचन सुनाये॥
हमको मिले सो जीव उबारें। तुम तो लाये द्रव्य भंडारें॥

दोहा—नाम रतन धन बेचिके, लाया माल हमाल।
बूड़ा वंश कबीरका, उपजा पूत कमाल॥
कौड़ीसे हीरा भया, हीरेसे भया लाल।
आधे साहिब कबीर हैं, पूरा भक्त कमाल॥

चौपाई

इतना कही दया प्रभु कीना। शाहको दुख छुड़ाये लीना॥
साहब नजर करी भर पूरी। शाहकी जलन भई तब दूरी॥

दरियाखान वचन

दरियाखान कहे कर जोरी। सुनु समरथ विन्ती मोरी॥

हम तो फूलका पखुरी डारा। कौन चूक है गुरू हमारा॥
पहिले इलम फकीरी दीना। फिरके जनम भूतको कीना॥
कौन चूक अपराध गुसाँई। सो समरथ मोहि देहु बताई॥
थोड़ा चूक बहुत दुख दीना। हो समरथ मैं होऊं अधीना॥
भूत जनम बड़ होय मलीना। महा दुख तुम सदा जो दीना॥
ऐसी चूक है कहा हमारी। भूत खानिका दुख बड़ भारी॥

सतगुरु वचन

सुनो दरिया यक बात हमारी। पहली बोधहिमें भयी खुवारी॥
बिना कसनी इलम तोहि दीन्हा। बिनाकसनीतुमगुरुनहिं चीन्हा॥
निरखि परखिके जिन सिर दीना। सो कबहूँ ना होय मलीना॥
पहले जगमें जीव चितायी। समझि सीख पुनि दीजे ताही॥
इल्म दिया जब रहा न कोई। पीर मुरीदके वेष होय जोई॥
कलियुग जीव कालके सारा। सीखे चतुराई करे अपारा॥
इल्म लेनकुं झगरा ठाने। कसनी सुनी क्रोध मन आने॥

कसनी परीक्षा

पहिले कसनी कसहिं अपारा। तन मन धन यह तीन विचारा॥
यह तीनूं है त्रैगुण सारी। यह तीनों मिलि भक्ति उजारी॥
यहि तीनों मिलि गुरुके बस होई। करहु मुरीद इलम देहु सोई॥

दोहा—यह तीनों अरपे नहीं, कोटिक कहे बनाय।
कहै कबीर सत मानहु, तेहि जिव गोता खाय॥

चौपाई

यह तीनों तुम दीना नाहीं। इलम फकीरी सहज तुम पाई॥
तुमको कसनी नहीं लगारा। तुम दोजखकानर गुरुको मारा॥
अपना कौल तुम गये हिरायी। ताते जनम भूतको पायी॥

तुम ता औगुन बहुते कीन्हा । दोऊ नजर तुम गुरु नहिं चीन्हा ॥
अब तो हमसो कछू न होई । गुरुका शब्द हुआ होय सोई ॥
इसमें दोष गुरुका नाई । तुम्हरी दुर्मति भूत गति पाई ॥

दोहा–तुम जानो हम भूलिया, दिलमें रहे हुलास ।
कलयुग जीव बहु भूलसी, सो रहे तुमरे पास ॥

चौपाई

बहुतक शिष्य होयँगे भाई । सो सतगुरुसो कौल बँधाई ॥
तन मन धन चरणों धरिहैं । ऐसी लबारी मुख सो करिहैं ॥
ऐसी कहि वह शब्द सो लईहै । शब्द लेइ पुनि एक न दइहै ॥
साचा कौल हजूरी कीना । कौल चूक सो तुमको दीना ॥
ऐसा कलिका कठिन तमाशा । बहुत रहेंगे तुमरे पासा ॥
जो कोइ होइ हैं कौल मलीना । ताको जनम भूतको दीना ॥

दोहा–सब दोजख फिरि आइहैं, तब तुम करो सम्हार ।
इल्म फकीरी साधिके, उतरो भवजल पार ॥

चौपाई

अहमद शाह चले शिरनायी । धनिसतगुरू मैं तुव बलि जाई॥
हमरे तनकी तपन बुझायी । दूरियाखाँ चले पछतायी ॥
सत्य भूपकी राह चलायी । जैसा किया तैसा फल पायी ॥
शिष्य होयके दुर्मति करहीं । सो तो जनम भूतको धरहीं ॥

कमाल वचन

तबहीं कमाल कहे शिर नाई । हे समरथ करु कौन उपाई ॥
कैसे चलिहहिं पंथ हमारा । कैसे होइहहिं जीव उबारा ॥
कैसे आवागमन मिटाऊ । सो साहब मोहि भाषि सुनाऊ॥
कैसे उतरूँ भवजल पारा । सतगुरू मेरा करहु उबारा ॥

सत गुरु वचन

सुनहु कमाल कहूँ चित्त लाई। तुमरे पंथमें मुक्ती नाई॥
प्रथम शिष्य दरियाको कीना। ताको जन्म भूतको दीना॥
पहले इल्म फकीरी दीना। फिरके जन्म भूतको कीना॥
उनही जन्म भूतको पायी। शब्द पाय पुनि गये गवाँयी॥
पंथ न चले ऐसे सुनि लेहु। प्रथम बोध विचली पुनि गेहू॥

दोहा-पंथ न चले कमालजी, कोटिक करो उपाय।
धोखे जीव बिगोय हो, धर्मराय धरिखाय॥

कमाल वचन

हाथ जोरिके शीश नवायी। समरथ मोहि कहो समझायी॥
पंथ न चले कौन विधि करिये। कहो तो अलोप पांव हम धरिये॥
मैं हूँ जेठा शिष्य गुसाँई। पंथ ना चलइ भौजल भाई॥
बिना पंथ मोहि कौन पिछाने। कमाल कबीर सबै जग जाने॥

सतगुरु वचन

सतगुरु कहै कमाल सुने बानी। पंथ चलनकी सुधि पहिचानी॥
कमाल नाम ले पंथ चलाऊ। कही ज्ञान घर घर समझाऊ॥
इल्म फकीरी राखो हम पासा। और सखी पद करो परकाशा॥
यही शब्द करो गुरु आई। बिंद साधना रहे सब ताई॥
रहनि गहनि तुम देहु बुझाई। सो जिव धर्म सुन्नमों जाई॥
चारों युगमों अटल मम दासा। तुम साखी पद करो प्रकाशा॥
यह राह मेटि भाषो अधिकारा। निश्चय परिहो नर्क मंझारा॥

साखी-परमारथ तुम साजहु, करहु शब्द विचार।
भौसागरमें भय नहीं, सोऽहं नाम अधार॥

कमाल-वचन चौपाई

समरथ गुरु ऐसी सुनि लेहू। इलम फकीरी किसकूँ देहूँ॥

कौन ठौर घर रहे निदाना । सो समरथ मोहि कहो परमाना ॥
सो मैं कहूँ शिष्यनले आगे । सुरत शब्द चरण चित लागे ॥
एती आगम कहो सुधारो । चरण टेकि प्रभु करों निहारो ॥

सतगुरु वचन

सुनो कमाल निज कहों विचारा । जब सतगुरुमुखते शब्द उचारा ॥
कलियुग आया कहूँ प्रमाना । बांधो गढ़में होय अस्थाना ॥
सुकृत अंश प्रकटे संसारा । अंश लोकते आये हमारा ॥
सो धर्मदास घर लेई औतारा । उसका पंथ चले संसारा ॥
वंश ब्यालिस अविचल राजा । सोइ जीवनका करिहै काजा ॥
उनका बीरा शब्द जो पावै । सोइ हंसा लोक सिधावै ॥
और जीव बांचे नहिं कोई । कोटिक ज्ञान करे पुनि जोई ॥
आगम तुमको कहूँ समुझाई । कुदरत कमाल सुनो चितलाई ॥
जोई इल्म पुरुषके पासा । सोई वंशमें होय प्रकाशा ॥
विना फकीरी इल्म नहिं जाने । युक्ति बिना योगी बउराने ॥
युक्ति सार कोइ हँसा पावे । लोकहिं जाय बहुरि नहिं आवे ॥
आवत जात मिलि रहे समाई । विना फकीरी इल्म कहँ पाई ॥
सतगुरु बिना युक्ति नहिं आवे । बिना युक्ति फकीरी पछतावे ॥
पांच तीनको करहिं निरासा । सोई फकीरी इल्म जिन पासा ॥
लगन तत्त्वकी युक्ती जाने । सोई योगी है युक्ति पराने ॥
नहिं तो कथनी कथहिं अपारा । बिनु परिचय बूड़े संसारा ॥

दोहा–कथनी करनी चतुराई, कीना पांचों पार ।
वंश छाप गुरु युक्ती पावे, इलम फकीरी सार ॥

कमाल वचन

चरण टेंकि हम करें निहोरा । हमरे जिव गुरु होय निबेरा ॥
भौसागरमें बहु दुख होई । महा त्रास दुख व्यापै सोई ॥
कठिन त्रास है भवजल धारा । जाते सतगुरु करहु उबारा ॥

सतगुरु वचन

कुदरत कमाल सुतअंश हमारा । तुमरे जिवका करो उबारा ॥
इल्म फकीरी तुमको दीना । जीव उबार अपना करलीना ॥
सोई इल्म मम राखू पासा । साखी पद तुम करहु प्रकाशा ॥
जो यह इल्म बाहर जायी । तो हम तुम बिछुरेंगें भाई ॥
इल्म यही धर्म दासको दीना । जाते हंस अमर करि लीना ॥

दोहा-बन्धे कौल कमालके, सतगुरु कहे पुकार ।
धरमदासके वंश विना, कौन उतारे पार ॥

आगे बानी भाषूँ भाई । दास कमाल सुनो चितलाई ॥
कलियुग भेद करूँ परकाशा । हंस पहुँचाऊँ लोक निवासा ॥
बिहँगम मति हंस जब होई । सत्य कही सत्यलोक समोई ॥
आगम भेद कही समुझाई । भौजल बूड़त तुरत बचाई ॥
बंश ब्यालिस सौंपी गुरुबाही । जो बूझे तेहि देउँ बताही ॥
सोई इल्म सौंपा उनपासा । सब जीवनकी पूरें आसा ॥
वंश दया जाहि पर होई । होय पुनि हंसा अम्मर सोई ॥
कह कबीर हम सतही भाखा । सुनो कमाल गोय नहिं राखा ॥

दोहा-कलमाते कल उपज्यो, सब कल कलमा माहिं ॥
सो कलमा दिया कमालको, सब कल कलमाहि समाहिं॥
जीवत मृतक होय रहे, जाग्रत माहिं समाय ।
इल्म फकीरी अलम् सही, आवे जाये बलाय ॥
समरथ सतगुरु भेटिया, भये मद मस्तु निहाल ।
प्रेम प्याला सही किया, मुक्ता खेले कमाल ॥

इति कमालबोध

विवेचन

कमालबोधकी केवल एकही प्रति सम्वत् १९११ की लिखी हुई मेरे पास है। जिस परसे यह पुस्तक छापी गयी है। पाठक! एकबार आप अनुरागसागर आदिग्रन्थोंमें लिखे बारह पंथका हाल स्मरण कीजिये फिर इस ग्रन्थोंके आशयसे मिलाइये। अब आप स्वयम् विचार कीजिये आप किस ग्रन्थको सत्य और किसको असत्य मानते हैं। और ग्रन्थोंमें कमाल साहबको साक्षात् कालदूत लिखा है। इस ग्रन्थमें कबीर साहेब खास वही भेद जो गुरू धर्मदास साहबको बतलाया है वही मुक्ति भेद कमालको बतलाने की बात कहते हैं। भला बतलाइये तो वह सत्य की यह ? इसी प्रकार कबीरपन्थके सब ग्रन्थोंमें गड़बड़ और पूर्वापर तथाविषयान्तरका भेद है इन्हीं ग्रन्थोंको कबीरपन्थीगुरू और महन्त लोग अपनामार्ग दर्शक मानते और घमण्ड करते हैं। यही कारण है कि आज कोई भी कबीरपंथी महंत साधू और सेवक किसी विचार पर स्थिर न होकर मारे मारे और भटकते फिरते हैं। और विषयवासनामें लुप्त हो संसारकी मर्यादा और सत्यगुरूकी आज्ञाका उल्लंघन कर न करने योग्य कर्मोंको करके कबीरपंथकी निन्दा करा रहे हैं। यही गड़-बड़ देखकर अच्छे २ विचारपने सत्यगुरूके उपदेशको समझने और जाननेवाले लोग कबीरपंथी कहलानेसे ही लज्जित होकर इस पन्थको छोड़ते जाते हैं जिसके पूर्ण वृत्तान्त कबीर धर्मसारमें लिखा जायगा.

इति